जिनभाषित

10 रुपये

मई 2001

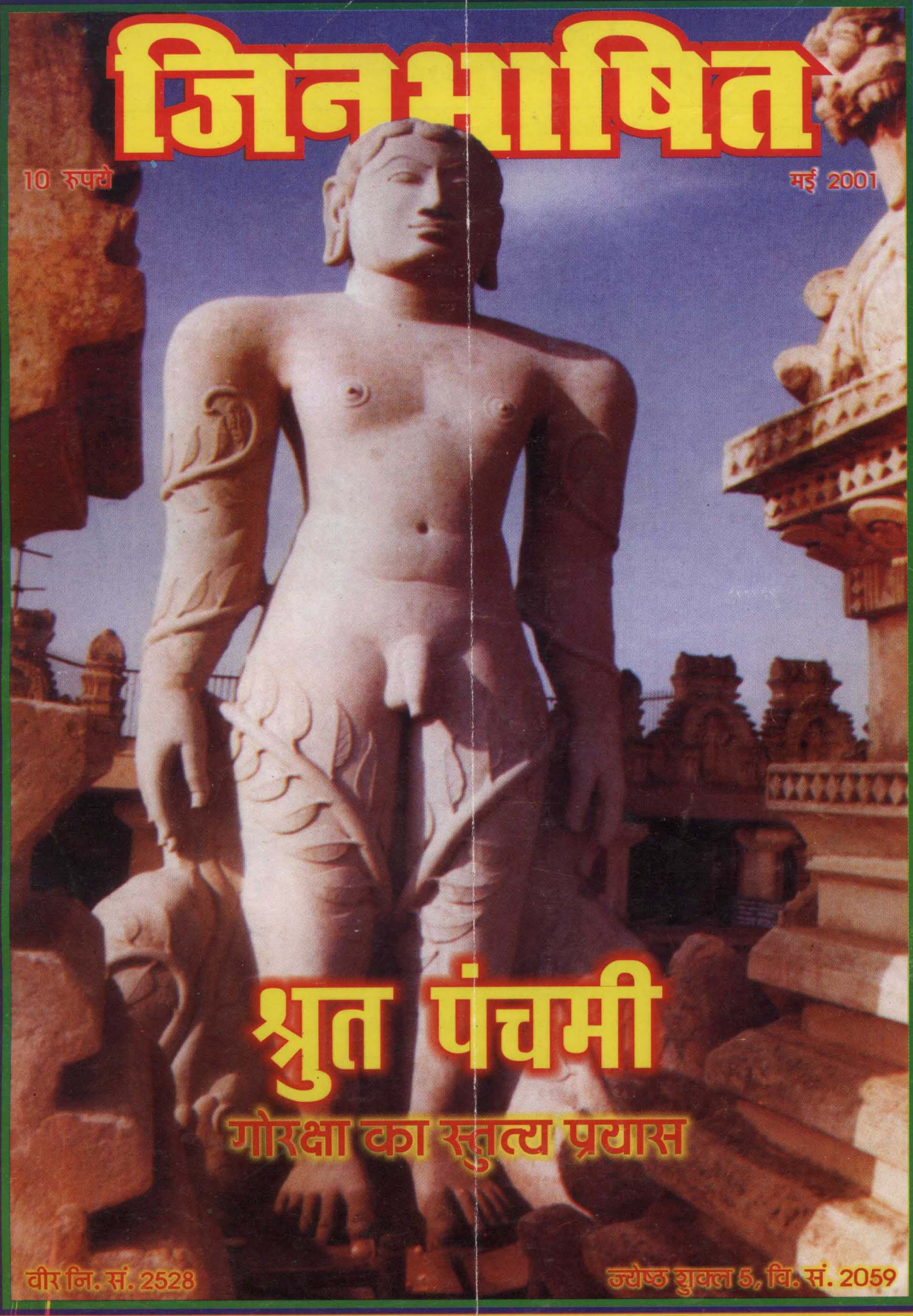

श्रुत पंचमी

गोरक्षा का स्तुत्य प्रयास

वीर नि. सं. 2528

ज्येष्ठ शुक्ल 5, वि. सं. 2059

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनभाषित

मई 2001

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
137, आराधना नगर,
भोपाल-462003 म.प्र.
फोन 0755-776666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द लुहाड़िया
पं. रतनलाल वैनाडा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन
डॉ. वृषभ प्रसाद जैन

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरीलाल पाटनी
(मे. आर.के. मार्बल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश राणा, जयपुर

◆

द्रव्य-औदार्य
श्री अशोक पाटनी
(मे. आर.के. मार्बल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-351428,352278

◆

मुद्रक
एकलव्य आफसेट सहकारी
मुद्रणालय संस्था मर्यादित,
महाराणा प्रताप नगर, भोपाल
फोन-0755-579183,98270-62272
शब्द संयोजन- मीडिया ग्राफिक्स

◆

मूल्य : दस रुपये

अन्तस्तत्त्व		पृष्ठ
1. विशेष समाचार : गोरक्षा का स्तुत्य प्रयास	रवीन्द्र जैन	1
2. शान्ति का मार्ग : लोभ से मुक्ति	आचार्य श्री विद्यासागर	2
3. आपके पत्र : धन्यवाद		3
4. उर्दू शायरी में भक्ति और अध्यात्म	शीलचन्द्र जैन	5
5. नवनीत : भगवती आराधना में मनोविज्ञान		6
6. बोधकथा : यमराज को भी डर	डॉ. जगदीशचन्द्र जैन	6
7. सम्पादकीय : श्रुतपञ्चमी : श्रुत की निश्चयपूजा आवश्यक		7
8. प्रवचन : ज्ञान और अनुभूति	आचार्य श्री विद्यासागर	9
9. लेख : सम्यक् श्रुत	सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र शास्त्री	12
10. प्राचीनकथा : ऋद्धि और सिद्धि	आचार्य श्री अभिनन्दनसागर	14
11. लेख : कषायों की प्रशमता और परिणामों की समता का नाम सल्लेखना	मुनिश्री अजितसागर	15
12. शोध आलेख : जैन आचार में इन्द्रियदमन का मनोविज्ञान	प्रो. रतनचन्द्र जैन	16
13. गीत : तुम बजाय इसके	अशोक शर्मा	18
14. संस्मरण : छोटे मियाँ सुभान अल्लाह	पं. मूलचन्द लुहाड़िया	19
15. शोध आलेख : 'मूकमाटी' में प्रशासनिक एवं न्यायिक दृष्टि	सुरेश जैन आई.ए.एस.	20
16. शंकासमाधान	पं. रतनलाल वैनाडा	22
17. ग्रन्थ समीक्षा : सदलगा के सन्त	डॉ. भागचन्द भागेन्दु	23
18. लेख : तीर्थंकर महावीर के उपदेशों की प्रासंगिकता	डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया	24
19. व्यंग्यकथा : सफेद शेर की नस्ल	शिखरचन्द्र जैन	25
20. नारीलोक : हमारा पहनावा हमारी पहचान	डॉ. ज्योति जैन	28
21. गजल : भूल और सुधार	ऋषभ समैया 'जलज'	29
22. बालवार्ता : बुद्धिचातुर्य की कथाएँ	श्रीमती चमेलीदेवी जैन	30
23. समाचार		31
24. कविता : स्व. पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य : श्रद्धा सुमनाञ्जलि	पं. लालचन्द्र जैन 'राकेश'	

आवरण पृष्ठ -3

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष समाचार

गोरक्षा का स्तुत्य प्रयास

● बूचड़खाने ले जाये जा रहे 1200 मवेशी पकड़े

● कसाइयों के गिरोह का पर्दाफाश

मध्यप्रदेश में चारा और पानी की किल्लत होने से कसाइयों तथा मांस-व्यापारियों का एक बड़ा गिरोह बीना, विदिशा, गुना, ललितपुर, झाँसी आदि जिलों में सक्रिय है तथा वह स्वयं को पशु व्यापारी बताकर गाँव-गाँव घूमकर कृषि के नाम पर किसानों से उनके जानवर खरीद रहा है तथा उन्हें भारी तादाद में बूचड़खाने भेज रहा है। ये कसाई ऐसे गाँवों में पहुँच रहे हैं जहाँ पशुओं के लिये पानी और चारे का अभाव है तथा किसान अपने जानवरों को चारा पानी उपलब्ध नहीं करा पा रहे हैं। कसाई मात्र 200 से 300 रुपये में बछड़े तथा पाड़े एवं 700 से 800 रुपये में गायें खरीद रहे हैं। चूँकि किसान के लिए बछड़े तथा पाड़े फिलहाल उपयोगी नहीं है तथा कसाई उन्हें झाँसा देते हैं कि वे जानवरों को कृषि कार्यों के लिये ही बेचेंगे। ऐसे में किसान अपने जानवर इन कसाइयों को बेच देते हैं।

बीना रेलवे स्टेशन एक ऐसा स्टेशन है जहाँ ये कसाई उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश राजस्थान तथा गुजरात तक से खरीदे गए जानवरों को एकत्रित करते हैं। इस रेल्वे स्टेशन पर कोई बड़ा अधिकारी पदस्थ नहीं है। छोटे कर्मचारियों से कसाइयों की मिलीभगत है जिससे सारे नियमों को ताक पर रखकर रेल कर्मचारी इन कसाइयों को मालगाड़ी उपलब्ध कराते हैं, इन गाड़ियों में जानवरों को भरकर ये कसाई पहले करगी रोड रेलवे स्टेशन ले जाते हैं वहाँ से सड़क मार्ग द्वारा असम तथा पश्चिम बँगाल होते हुए इन जानवरों की तस्करी बंगला देश तक हो रही है। इन कसाइयों के गिरोह की कुरवाई (विदिशा) के एक पशु चिकित्सक तथा तहसीलदार से भी मिलीभगत है जो इन पशुओं के परिवहन के लिये कसाइयों को फर्जी प्रमाण पत्र बना कर देते हैं।

इस माह की 2 तारीख को सागर में विराजमान पूज्य मुनि श्री समतासागर जी, पूज्य मुनि श्री प्रमाणसागर जी तथा ऐलक श्री निश्चय सागर जी महाराज को बीना के एक युवक ने पशुओं की तस्करी की जानकारी दी तथा बताया कि आज शाम को एक ट्रेन की 40 बोगियाँ भरकर जानवर सागर रेलवे स्टेशन से गुजरेंगे। मुनि संघ ने यह जानकारी सागर शहर के संभ्रांत लोगों तक पहुँचाई। 2 मई को देखते ही देखते सागर रेलवे स्टेशन पर पूरा शहर उमड़ पड़ा। शाम 4 बजे सागर की महापौर मनोरमा गौर, जिला कांग्रेस अध्यक्ष बृजकिशोर रूसिया, पूर्वमंत्री बिट्टु-लभाई पटेल, विधायक श्रीमती सुधा जैन, सांसद वीरेन्द्रसिंह सहित जैन समाज के युवक, शिवसेना के कार्यकर्ता तथा आम नागरिक जिस रेलवे ट्रेक्स से जानवरों से भरी मालगाड़ी गुजरने वाली थी उसे घेरकर खड़े हो गए। लगभग तीन चार हजार लोगों के हुजूम को देखकर रेल अधिकारी तथा रेल्वे पुलिस हरकत में आई तथा बीना की ओर से आनेवाली जानवरों की ट्रेन को वहाँ रोका गया। सभी लोग यह देखकर दंग रह गए कि एक एक बोगी में 40 से अधिक पशु भरे गए थे तथा इन पशुओं के लिए इस भरी गर्मी में न तो चारा पानी की व्यवस्था थी और न ही उपचार का कोई साधन था। पशुओं की आँखों के आँसू उनके चेहरों पर साफ दिखाई दे रहे थे। प्रत्येक बोगी में कसाइयों के दो-दो दलाल भी बैठे थे जो हथियारों से लैस थे। ट्रेन के रुकते ही उन्होंने पहले तो कार्यकर्ताओं पर हमला करना चाहा लेकिन भारी भीड़ ने 44 लोगों को पकड़ लिया तथा उन्हें रेलवे पुलिस के सुपुर्द कर दिया।

खबर मिलते ही सागर शहर के अनेक लोग इन जानवरों की प्राण रक्षा के लिये स्टेशन पहुँचने लगे। पहले तो बीना के रेल कर्मचारियों ने सागर रेलवे पुलिस पर दबाव डलवाया कि वे इस ट्रेन को करगी रोड जाने दें, किन्तु आम जनता का आक्रोश देखकर पुलिस ने 44 लोगों पर पशुक्रूरता अधिनियम की धाराएँ लगाकर उन्हें हिरासत में ले लिया तथा पशुओं को चारा, पानी एवं उपचार हेतु 'आचार्य विद्यासागर गौ संवर्द्धन केन्द्र' को सौंप दिया। हजारों लोग इन पशुओं की तीमारदारी में लग गए, उन्हें चारा, पानी दिया गया तथा बीमार पशुओं का पशु चिकित्सक बुलाकर उपचार कराया गया। पुलिस ने इस प्रकरण में फरियादी का नाम पूछा तो सागर के सांसद, महापौर, विधायक, भाजपा एवं कांग्रेस के पदाधिकारियों ने स्वयं का नाम फरियादी में लिखाया तथा कसाइयों के दलाल के बयानों के आधार पर इन पशुओं को बूचड़खाने ले जाने का प्रकरण भी कायम किया।

अखिल भारतीय कृषि गौ सेवा संघ वर्धा के कर्मचारी अध्यक्ष उदय लाल जारोली वर्धा से सागर पहुँचे तथा उन्होंने पुलिस और न्यायालय को पशु संरक्षण अधिनियम की प्रतियाँ उपलब्ध कराकर इस घटना को जघन्य अपराध तथा भारत से गोवंश समाप्त करने की साजिश बताया। श्री जारौली ने कहा कि रेलवे विभाग को बिना कलेक्टर की अनुमति के पशुओं के परिवहन के लिये बोगियाँ उपलब्ध नहीं कराना चाहिए, ऐसा नियम है। इसके अलावा पशुओं के परिवहन के समय बोगी में पर्याप्त चारा, पानी तथा पशु चिकित्सक होना चाहिए। यह देखने का काम भी रेल विभाग का है। लेकिन कसाइयों की मिलीभगत के कारण रेल कर्मचारियों ने इसका ध्यान नहीं रखा। जारौली ने इस जानवरगाड़ी से जो कागजात पकड़े है उनका अध्ययन करके उन्हें फर्जी बताया है। उदाहरण के लिये कुरवाई के एक पशु चिकित्सक का प्रमाण पत्र है कि उसने इन पशुओं का चिकित्सकीय परीक्षण किया तथा उन्हें परिवहन के योग्य माना है। कुरवाई में यह परीक्षण 2 मई को होने का प्रमाण पत्र है, जबकि 2 मई को ही सुबह बीना में जानवरों की ट्रेन भरी गई। तो क्या ये जानवर अपना परीक्षण कराकर उसी दिन कुरवाई से बीना रेलवे स्टेशन पहुँच गए? कलेक्टर के बजाय एक तहसीलदार का प्रमाण पत्र है कि स्थानीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विधायक की अनुशंसा पर वह इन पशुओं के परिवहन की अनुमति देता है, जबकि तहसीलदार को ऐसी अनुमति जारी करने का अधिकार ही नहीं है।

यह भी पता लगा है कि सागर में जानवरों की ट्रेन पकड़े जाने से पहले बीना से कई ट्रेनें भरकर जानवर बूचड़खाने भेजे गए थे। सागर में आम नागरिकों की जागरूकता के कारण कसाइयों में भय व्याप्त है। सागर के कार्यकर्ता बीना-सागर रेल मार्ग पर बाकायदा निगरानी कर रहे हैं। 'आचार्य विद्यासागर गोसंवर्धन केन्द्र' के उपाध्यक्ष महेश जैन बिलहरा, सुरेन्द्र जैन मालथौन तथा ऋषभ जैन मड़ावरा ने कहा कि आचार्य श्री विद्यासागर जी ने हमें जीवरक्षा का संदेश दिया है इसलिये हम कोई भी कुर्बानी देकर इन जानवरों की रक्षा करेंगे। उन्होंने कहा कि सागर के आम नागरिकों के सहयोग से हम इन जानवरों के लिये चारा पानी की व्यवस्था कर रहे हैं। यदि इस तरह अन्य जानवर भी बूचड़खाने जाने से रोके जाते हैं तो हम उनकी भी सुरक्षा अपने केन्द्र में करेंगे। उन्होंने बताया कि केन्द्र की 90 गौशालाएँ अलग अलग शहरों में संचालित हो रही है, जहाँ इन जानवरों को भेजे जाने की योजना है।

सागर जिला पंचायत के पूर्व अध्यक्ष स्वदेश जैन गुड्डू एवं एडव्होकेट श्री विरधीचंद जैन ने राज्य सरकार से बीना में पशुतस्करी रोकने के लिये एक निगरानी दस्ता तैनात करने की माँग की है।

भोपाल में श्री दिगम्बर जैन मुन संघ सेवा समिति ने मुख्यमंत्री को पत्र लिखकर पशुतस्करी की उच्चस्तरीय जाँच कराने, कुरवाई के पशु चिकित्सक तथा तहसीलदार को निलम्बित करने तथा तस्करी में सहयोग देने वाले बीना के रेलवे कर्मचारियों पर आपराधिक प्रकरण कायम करने की माँग की है।

मुनिसंघ-सेवासमिति ने भोपाल रेल मंडल प्रबंधक को भी पत्र लिखकर कहा है कि पशुतस्करी में रेल का उपयोग प्रतिबंधित करें, पशुपरिवहन के लिये नियमानुसार ही रेल उपलब्ध करायें, साथ ही बीना के जिन रेल कर्मचारियों ने स्वार्थ में अंधे होकर कसाइयों की मदद की है उन्हें दंडित करें।

रवीन्द्र जैन

शान्ति का मार्ग : लोभ से मुक्ति

बहोरीबंद में आचार्य श्री विद्यासागर जी के प्रवचन का अंश

संसारी प्राणी सारी दुनिया को अपने अण्डर में रखना चाहता है। जो दूसरे को अण्डर में रखने की चाह रखता है, उसके परिणाम ऐसे होते हैं कि उसके लिए विशेष रूप से अण्डरग्राउण्ड की व्यवस्था होती है। नीचे के नरक रूपी अण्डर ग्राउण्ड की व्यवस्था वह करता है। यह व्यवस्था किस कारण से होती है? तो लोभ के कारण होती है। एक विषयों का लोभ होता है, दूसरा आत्म संपदा को पाने का लोभ होता है। आत्मसंपदा का लोभ हमारे लिये ऊपरी स्वर्गरूपी व्ही.आई.पी. व्यवस्था देता है। लेकिन विषयों का लोभ हमें नीचे की व्ही.आई.पी. व्यवस्था का देनेवाला होता है। अपने जीवन में जड़ का संग्रह तो है, और हीरे, जवाहरात आदि का संग्रह करते हैं, इससे आत्मिक शांति की प्राप्ति नहीं होती है। आत्मिक शांति तो रत्न त्रय रूपी रत्नों को ग्रहण करने से ही प्राप्ति होती है। जड़ वस्तु के संग्रह से रागद्वेष, मोह लाभ, कषाय आदि होते हैं जो हमारी अशांति के कारण है। और रत्नत्रय रूपी संकल्प के माध्यम से राग द्वेष, मोह, माया आदि समाप्त होते हैं।

व्यक्ति का लोभ ही व्यक्ति के लिये अशान्ति का कारण होता है। यह जड़ वस्तु को ऐसे जकड़ रखता है जैसे एक बंदर लोभ के कारण अपनी प्रिय वस्तु चने का लोभ कर एक घर की छत पर गया। देखा एक घड़े में चने रखे थे। प्रिय वस्तु के लोभ में आकर हाथ डाल देता है। इधर-उधर देखता है कोई पकड़ न ले, देख न ले, और बहुत से चनों को मुट्ठी में बांध लेता है। हाथ फंस जाता है व समझता है कि किसी ने पकड़ लिया है। घड़े में कौन बैठा है मुझे किसी ने पकड़ लिया है। वह बंदरों की टीम को आवाज देता है। आकर कुछ बंदर उसे अपनी प्रिय वस्तु को छोड़ने को कहते है। छोड़ता तो हाथ बाहर आ जाता है। उसे किसी ने पकड़ा नहीं था स्वयं के लोभ ने उसे पकड़ था। उसके पास जेब तो नहीं थी लेकिन आप सभी लोग जेबवाले हैं। इसलिये आप लोगों के समाने बोलयाँ लगाते हैं। क्योंकि जेब से बाहर कैसे निकाला जाये। क्योंकि जिसको अपने जेब की गरमी अधिक होती है, वह व्यक्ति नरक रूपी शुद्ध गरमी को विशेष रूप से पाता है। हमारे जेब की ही गरमी इसमें कारण होती है। मन की गरमी के कारण भीषण गरमी भोगने को मिलती है। इस मन की गरमी के कारण बहुत बड़ा विस्फोट हो सकता है, जो सारी दुनिया में कुछ समय में हाहाकार मचा सकता है।

लोभ व्यक्ति के लिये भटकाता है। आप जैसा लोभ करोगे तो वैसा ही फल पाओगे। धर्म का लोभ होता, दूसरा धन का लोभ होता है। जैसे पुलिस होती है वह आपको जेल भी ले जाती है, तो आपकी सुरक्षा भी करती है। हमें जितनी आवश्यकता है, हम उतना ही अपने पास रखें। आवश्यकता से अधिक हम रखेंगे तो वह हमारे लिये अशांति का कारण ही बनेगा। लोभ एक सीमा तक हो तो ठीक है। लेकिन महाराजजी! जब ये आ जाता है तो उस समय महाराज भी याद नहीं रहते हैं। महाराज की तो बात अलग हैं भगवान भी नहीं दिखते हैं। इस लोभ के कारण ही सारी दुनिया हैरान है। लोग आक कहते हैं, महाराज घर में सब कुछ है धन है, धान्य है, नौकर, चाकर, बेटा, बेटी सब है, लेकिन शांति नहीं है। पहले सब कुछ था लेकिन जब से लक्ष्मी देवी घर में आई है तब से ही अशांति हुई है। आप ऐसा आशीर्वाद दे दो जिससे हमें शान्ति प्राप्त हो जाये। आज अमेरिका जैसा राष्ट्र सबसे बड़ा है। वहाँ पर यदि सबसे महंगी वस्तु है तो वह नींद है। नींद के लिये वहाँ के लोग नींद की गोलियों की फाकी लेते हैं। उन्हें नींद नहीं आती, मूर्छा आती है। जहाँ पर सबसे अधिक धन होगा, वहाँ पर ऐसा ही होता है। वहाँ सबसे अधिक अशान्ति रहेगी। इस धन के कारण एक दूसरे के प्रति कृतज्ञता भी नहीं रखते हैं। बेटा भी बाप को भूल जाता है। कृतज्ञता ऐसा गुण है - जिसे आचार्यों ने कहा - रेत के ढेर में जैसे हीरे की कणिका मिलना दुर्लभ है वैसे ही ये कृतज्ञता रूपी गुण दुर्लभ होता है। जो धन के कारण व्यक्ति के अंदर से समाप्त हो जाता है। आप लोग अपनी बुद्धि को ठीक करें, अपनी शान्ति के लिये जड़ के लोभ का त्याग करें, हम भगवान शान्ति नाथ से यही प्रार्थना करते हैं। आप लोग लोभ की पकड़ से मुक्त रहें, तो निश्चित रूप से शांति को पायेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके पत्र : धन्यवाद

जिनभाषित का अप्रैल 2001 अंक देखकर तबीयत खुश हो गई। मैंने नहीं सोचा था कि कोई धार्मिक पत्रिका इतनी लुभावनी हो सकती है। पत्रिका का आकार, रंगरूप, सज्जा और संयोजन बहुत आकर्षक है। प्रकाशित सामग्री रुचिकर होने के साथ-साथ उच्च स्तर की है। आप अपने मकसद में कामयाब हैं। निःसंदेह 'जिनभाषित' पत्रिका मौजूदा जैन पत्रिकाओं में शीर्षस्थान पायेगी। आपकी पूरी टीम बधाई की हकदार है। इतनी अच्छी पत्रिका देने के लिए धन्यवाद स्वीकार करें।

शीलचन्द्र जैन,
वाणिज्यिककर अधिकारी (सेवा निवृत्त)
13, आनन्द नगर, जबलपुर

'जिनभाषित' का अप्रैल माह का 'भगवान महावीर का 2600वाँ जन्मकल्याणक महोत्सव' विशेषांक मिला। आपके श्रेष्ठ सम्पादकत्व से प्रकट यह पत्रिका वस्तुतः पाठक को निजभाषित से जिनभाषित तत्त्वज्ञान की ओर अवश्यमेव अग्रसर करने में समर्थ होगी। विषयचयन एवं प्रस्तुतीकरण अतिश्लाघ्य है। इस अंक में श्रद्धेय पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य का स्मरणप्रतीक समाहित करने से गरिमा वृद्धिंगत हो गई है। मुद्रण, कागज, गेटअप आदि सभी प.पू.108 आचार्य श्री विद्यासागर महाराज के आशीर्वाद के अनुरूप ही हैं। आपको व समस्त सहयोगियों को बधाई। लेखकों को भी धन्यवाद।

पं. शिवचरणलाल शास्त्री,
मैनपुरी उ.प्र.

आपने मुझे 'जिनभाषित' का (अप्रैल 2001) अंक भेजने की कृपा की है। आभार। 'स्वर्णयुग के प्रतिनिधि का महाप्रयाण' शीर्षक से आपने पूज्य साहित्याचार्य पं. पन्नालाल जी पर सम्पादकीय लिखकर शुभ कार्य किया है। पंडितजी के महाप्रयाण का उनके अवदान के अनुरूप नोटिस नहीं लिया गया है। 'Unwept,unsung' वे चले गये। उनका ठीक से मूल्यांकन अपनी इस पत्रिका में जरूर करवाइयेगा।

'जिनभाषित को आपने सुरुचिसम्पन्न प्रकाशित किया है। जैन शासन की ऐसी पत्रिका, निश्चित ही जैनों को जैन बनाने की दृष्टि से अपनी भूमिका निभायेगी। उत्सवों, महोत्सवों, हल्लों-गुल्लों की अनुगूँज ही अनुगूँज से भरी अधिकांश पत्रिकाओं के बीच जैन शासन की समृद्धि एवं प्रासंगिकता को 'जिनभाषित' गहरे से रेखांकित कर सके, यही मनोकामना है।

प्रो. (डॉ.) सरोज कुमार
मनोरम, 37 पत्रकार कालोनी,
इंदौर-452001 म.प्र.

'जिनभाषित' का अप्रैल अंक करगत हुआ। कृतज्ञ हूँ। अनेक अभिनव उद्घोषों के साथ 'जिनभाषित' का अभ्युदय हुआ है। इसके माध्यम से जिनवाणी के प्रसार-प्रचार में नये नये वैचारिक वातायन खुलेंगे। यह प्रकाशन फूले और खूब फले, मेरे अनन्त आशीष स्वीकारिये। आप समाज के प्रबुद्ध पुरुष हैं। आप जैसे महानुभाव जमकर खूब काम करें। आपका मार्ग सदा निरापद रहे, यही कामना और भावना है।

डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया
मंगलकलश, सर्वोदय नगर, आगरा रोड,
अलीगढ़ उ.प्र.

'जिनभाषित' का अप्रैल 2001 अंक प्राप्त कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। प्रसन्नता का विशेष कारण यह है कि इस अंक में मेरे परम श्रद्धेय गुरुवर डॉ. पन्नालाल जी पर विशिष्ट सामग्री है। मैं सन् 1940 से 1946 तक उनके अधीन ही सागर में अध्ययन करता रहा। वे मेरे परम हितैषी, उद्भट विद्वान, श्रेष्ठ लेखक, अनन्वय अध्यापक और परम चारित्रवान व्यक्ति थे। पंडित जी पर आपका लेख और आपकी उनमें श्रद्धा ही इस पत्र के प्रेरक कारण हैं।

डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन
प्रोफेसर (से.नि.)
13, शक्तिनगर, पल्लवरम, चेन्नई-600043

'जिनभाषित' देखकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई। पत्रिका का नाम सहज, सरल एवं लालित्यपूर्ण है। लेखों का चयन एवं प्रस्तुतीकरण सराहनीय है। मुझे विश्वास है कि आध्यात्मिक व्यक्तित्व के निर्माण में यह पत्रिका अपना प्रायोगिक योगदान करेगी। आध्यात्मिकता एवं भौतिकता में सन्तुलन स्थापित करेगी। अपराधचेतना से युक्त व्यक्तित्व का रूपान्तरण करेगी। भाव, विचार, रुचि, ज्ञान और चारित्र की भिन्नताओं से संपृक्त प्रत्येक पाठक को आध्यात्मिक विकास के पथ पर अग्रसर करेगी। जिनभाषित-रश्मियाँ हमारे मंगल पथ को आलोकित करेंगी।

जैन समाज को अपने अहिंसक आचरण से अनेक आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक लाभ प्राप्त होतेहैं। यह आवश्यक है कि इस पत्रिका के माध्यम से हम अहिंसक आचरण के लाभों को प्रभावी ढंग से समाज के नवयुवकों के समक्ष प्रस्तुत करें।

सुरेश जैन, आई.ए.एस.
30, निशात कालोनी,
भोपाल-462003 म.प्र.

अप्रैल 2001 का जिनभाषित हृदयाह्लादक है। विविध विषयों का सम्पादन पत्रिका की चुम्बकीय विशेषता है। शलाकापुरुष पूज्य पं. गणेशप्रसाद जी वर्णी के व्यक्तित्व एवं साहित्यसेवा पर परम विद्वान स्व. डॉ. पंडित पन्नालाल जी साहित्याचार्य का संक्षिप्त लेख वर्णीजी के आकाश से विस्तारवाले उज्ज्वल आध्यात्मिक जीवन की झाँकी है। सम्पादकीय में विगत पीढ़ी के धुरन्धर जैन पंडित स्व. डॉ. पन्नालाल जी साहित्याचार्य के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को विषय बनाकर विद्वान सम्पादक ने सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की है।

बोधकथाएँ देकर पत्रिका की प्रभावकता में चार चाँद लगाये हैं। अध्यात्म और आगम के बीच 'नमस्कार सुख' का व्यंग्य मन को गुदगुदाते हुए मस्का लगाने की प्रवृत्ति पर चोट करता है।

आवरण-सज्जा 'जिनभाषित' के अनुकूल है एवं निर्दोष, स्वच्छ, सुन्दर मुद्रण पत्रिका के सौन्दर्य में वृद्धि कर रहा है। स्तरीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय सामग्री ने पत्रिका को गरिमा प्रदान की है। आपको कोटिशः बधाई।

श्रीपाल जैन 'दिवा'
शाकाहार सदन, एल-75, केशरकुंज,
हर्षवर्धन नगर, भोपाल-3

'जिनभाषित' का अप्रैल 2001 का अंक प्राप्त हुआ। हार्दिक धन्यवाद। अंक में दी गई सामग्री न केवल पठनीय है, वरन् संग्रहणीय एवं अनुकरणीय भी है। भगवान महावीर के 2600 वें जन्मकल्याणक महोत्सव के वर्ष में उनके सन्देशों का व्यापक प्रचार-प्रसार आवश्यक ही नहीं, अतिआवश्यक है, विशेषकर आज के इस आपाधापी वाले युग में तो वे अतिप्रासंगिक हैं। उनके अनेकान्तवाद और अपरिग्रहवाद आज विश्व की समस्याओं को सुलझाने में सक्षम हैं। केवल आवश्यकता उनको खुले मस्तिष्क से समझने की है।

इसके अतिरिक्त यह महोत्सव महानगरों तक सीमित न रहकर भारत के गाँव-गाँव तक मनाया जावे और देश के प्रत्येक जैन मंदिर एवं शास्त्र भण्डार में संगृहीत हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीकरण होना चाहिए। मूर्तिलेखों का भी संग्रह आवश्यक है। विश्वास है 'जिनभाषित' इसदिशा में आवश्यक पहल करेगा। इस कार्य में मैं अपनी सेवाएँ जितनी भी जरूरी हों, देने के लिये तत्पर हूँ।

डॉ. तेजसिंह गौड़,
एल-45, कालिदास नगर, पटेल कालोनी,
उज्जैन-456006

'जिनभाषित' का अप्रैल 2001 का अंक देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके आकर्षक सचित्र आवरणपृष्ठ ने भी मन मोह लिया। सम्पादकीय एवं 'महावीर प्रणीत जीवनपद्धति की प्रासंगिकता' पूर्णरूपेण सामयिक आलेख हैं। चारों अनुयोगों का सार इस पत्रिका में समाहित है। आबाल-वृद्ध, पुरुष-महिला सभी के लिए उपयोगी एवं वर्तमान स्थितियों से अवगत कराने वाली यह पत्रिका उन्नति के शिखर का स्पर्श करे, ऐसी शुभकामना है।

डॉ. आराधना जैन,
मील रोड, गंज बासोदा (विदिशा) म.प्र.

'जिनभाषित' का अप्रैल 2001 का अंक प्राप्त हुआ। यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आपके ज्ञानगाम्भीर्य का लाभ हमें पत्रिका के माध्यम से भी सुलभ होता रहेगा। पत्रिका के इस अंक में आपके वैदुष्य की झलक स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रही है। सभी आलेख, नवनीत, बोधकथा, शलाकापुरुष, नारीलोक, अल्पसंख्यक मान्यता से जैनसमाजको लाभ एवं कुण्डलपुर पर विशेष सामग्री सभी प्रेरणादायी एवं ज्ञानवर्धक हैं। मैं पत्रिका के अनवरत प्रकाशन की कामना करती हूँ।

डॉ. श्रीमती कृष्णा जैन
सहा. प्राध्यापक-संस्कृत विभाग,
शा. महारानी लक्ष्मीबाई कला-वाणिज्य महा.
लश्कर, ग्वालियर -474009

''जिनभाषित'' का महावीरजयन्ती विशेषांक प्राप्त हुआ। सामग्री का चयन पठनीय है, छपाई-सफाई भी सुन्दर है। श्री निहालचन्द जी के सुझाव अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। मेरा अपना विचार यह है कि सरकार पर निर्भरता या धन से कोई आयोजन असरकारी नहीं होता। असरकारी स्तर पर किया गया काम ही असरकारी होता है।

जमनालाल जैन
अभय कुटीर, सारनाथ (वाराणसी) 221007

'जिनभाषित' का अप्रैल अंक प्राप्त हुआ। धन्यवाद वर्तमान समय में पत्रिकाओं का बाहुल्य हो रहा है। अगर पत्रिका अपनी कोई पहचान बना सके तो उपयोगी होगी। पत्रिका के लिये निष्पक्षता भी आवश्यक है। पत्रिका के सम्पादक मंडल में माने हुए विद्वान् हैं अतः अपेक्षा यह है कि पत्रिका का स्वरूप भविष्य में भी ठीक रहेगा।

श्रद्धेय पू. पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य द्वारा रचित 'विद्याष्टक' को काफी समय से खोज रहा था, मिल नहीं पा रहा था। आपने पत्रिका के माध्यमसे उपलब्ध करा दिया, इस हेतु बहुत-बहुत धन्यवाद। पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ। आपको बहुत-बहुत बधाई।

डॉ. हरिश्चन्द्र शास्त्री
सहा. प्राचार्य
श्री गोपाल दि.जैन सिद्धान्त संस्कृत
महाविद्यालय, मुरैना (म.प्र.)

'जिनभाषित' पत्रिका का अवलोकन कर अत्यंत प्रसन्नता हुई। सामग्री स्तरीय तथा पठनीय है। बधाई स्वीकार करें। समाज सुधार हो या न हो, लेकिन एक लेख अवश्य ऐसा प्रकाशित करें तो ठीक रहेगा।

डॉ. नरेन्द्र जैन 'भारती'
सनावद (म.प्र.)

'जिनभाषित' अप्रैल 2001 प्राप्त हुआ। भगवान महावीर के 2600 वें जन्मकल्याणक महोत्सव के लिए समर्पित इस अंक को चाँदनपुर (श्री महावीर जी) में विराजित भ. महावीर के मनोज्ञ प्रतिमा-चित्र से मण्डित किया गया है, जो अत्यंत प्रासंगिक है। पत्रिका को पूर्ण आस्था और विश्वास के साथ आद्योपान्त पढ़ा। विषय-सामग्री का चयन और संयोजन स्तरीय एवं गरिमामय है। स्वर्णयुग के प्रतिनिधि पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य के महाप्रयाण पर लिखा गया सम्पादकीय श्रद्धासुमनों के सौरभ से ओतप्रोत है। 'कुण्डलपुर की भूवैज्ञानिक परिस्थितियों का विवेचन' पढ़कर नवीन मंदिर के निर्माण की आवश्यकता सबकी समझ में आ जायेगी। संक्षेपेण, अंक सुन्दर, संग्रहणीय, पठनीय एवं ज्ञानवर्धक है।

धर्मदिवाकर पं. लालचन्द्र जैन 'राकेश'
नेहरू चौक, गली नं. 4, गंज बासोदा
(विदिशा) म.प्र.

'जिनभाषित' अप्रैल 2001 का अंक पहली बार मुझे प्राप्त हुआ और इसे देखने-पढ़ने का मौका मिला। यूँ तो पत्रिकाएँ और जर्नल्स निकलती ही रहती है, पर जिनभाषित सब से कुछ अलग सा लगा। इसमें सब कुछ है और सबों के लिए है। मध्यप्रदेश से और भी जैन पत्रिकाएँ निकलती होंगी, पर आप अपनी पत्रिका के माध्यम से जैन समाज और बुद्धिजीवी वर्ग की जो सेवा कर रहे हैं, वह प्रशंसनीय है। सभी लेख, कविता और संस्मरण पढ़ने योग्य है जिनसे हम कुछ न कुछ सीख सकते हैं।

डॉ. विनोद कुमार तिवारी
रीडर व अध्यक्ष, इतिहास विभाग
यू.आर. कालेज, रोसड़ा-848210
(समस्तीपुर) बिहार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माननीय सम्पादक जी,

विद्यालय में एक प्रति 'जिनभाषित' की प्राचार्य महोदय के नाम आयी ज्ञात कर उसे लेकर खोला तो मुखपृष्ठ से अन्तिम पृष्ठ तक देखता चला गया। अन्तर जो हार्दिक आह्लाद हुआ उसे समीक्षाष्टक के रूप में प्रस्तुत किया है-

1

अरहंतप्रभु दिव्यदेशना, विविध विधाओं से बही धार।
जिनभाषित अप्रैल अंक पर, महावीर को लो उर धार॥
बायें पृष्ठ पर सुन्दर अन्तस्तत्त्व, दाँयें पृष्ठ पर सम्पादकीय लेख।
विद्ववर्य पं. श्री पन्नालालजी, महाप्रयाण का हुआ उल्लेख॥

2

भगवती आराधना का नवनीत प्राप्त कर, बोध कथा से सुन्दर सार।
महावीर की पावन वाणी, आचार्य श्री जी रहे उचार॥
नरतन निन्दनीय या प्रसंशनीय है, बोधकथा से अनुपम ज्ञान।
जीवनपद्धति महावीर से, रतनचन्द्र जी करें बखान।

3

कविता द्वारा गुरुस्तवन, कार्ययोजना सुन्दर प्रारूप।
उर्दू शायरी से अध्यात्म प्रस्तुति, हुआ प्रफुल्लित मनवच रूह॥
पुण्यपुरुष श्री गणेश प्रसाद जी, साहित्य सपर्या सुन्दर आयाम।
कुन्द कुन्द का शुभोपयोग ही, परम्परा से शिव सोपान॥

4

नारीलोक में गर्भपात पढ़, हृदयतंत्र हो गया है छार।
लघुकविता द्वय पढ़ मन से, हास्यव्यंग्य सुख नमस्कार॥
बालवार्ता बुद्धि चतुरता, बोधगम्य जो कथा प्रसंग।
अल्पसंख्यक यदि जैन बनें तो, लाभपूर्ण है बड़ा प्रसंग॥

5

बड़े बाबा की शरण सलौनी, छोटे बाबा करे बखान।
रतनचन्द्र जी के अभिनन्दन का, अनुकरणीय है प्रसंग महान॥
जैन कुम्भ जो कुण्डलपुर का, रवीन्द्र जैन की एक रिपोर्ट।
प्रथम दिवस से अन्तिम दिन तक, पढ़ बड़े बाबा को दो धोक।

6

भू-वैज्ञानिक परिस्थितियों का, तथ्यपूर्ण है चिन्तन सार।
लख निस्पृहता मात-चिरोंजा, गुरुकृपा का पा प्रसाद॥
तीर्थ सुरक्षा लक्ष्य बना है, सार्थक पहल की, जैन समाज।
विद्यासागर अष्टक लिखकर, पूज्य पं. जी गये सिधार॥

7

कवर पृष्ठ पर प्रवेश शिविर है, जैन श्रवण संस्कृति संस्थान।
सांगानेर व अशोक नगर में, जिनभाषित समीक्षा आद्योपान्त॥
जन-जन तक पहुँचे जिनभाषित, जन-जन का हो नितकल्यान।
जन-जन का हो नित मंगल, जन-जन बने जिनवर भगवान॥

8

जिन भाषित परिवार-
सम्पादक श्री रतनचंद्र जी, विद्वद्वर श्री जनभाषित परिवार।
सहयोगी सम्पादक पंचशीलसम पंच शारदासुत रहे सँवार।
सर्वोदय जैन विद्यापीठ प्रकाशक, नगर आगरा उत्तर प्रान्त।
पढ़कर जो आह्लाद हृदय में, दी शब्दावली 'पवनदीवान'॥

पं. पवनकुमार शास्त्री 'दीवान'
प्राध्यापक श्री गोपाल दि. जैन सि. सं. महा. पुरैना (म.प्र.) 474001

उर्दू शायरी में भक्ति और अध्यात्म

● *शीलचन्द्र जैन*

अनन्य भक्ति

तेरी सूरत से नहीं मिलती किसी की सूरत।
हम जहाँ में तेरी तस्वीर लिये फिरते हैं।

नवाब झाँसवी

मिथ्यात्व हटते ही, यथार्थ के दर्शन हो जाते हैं।

उठा सके आदमी तो पहले नज़र से अपनी नकाब उठाये।
जमाने भर की तजल्लियों[1] से नकाब उल्टी हुई मिलेगी॥

नवाब झाँसवी

दुनिया परस्पर विरुद्ध धर्मों से समन्वित है

रंज-ओ-राहत, वस्ल-ओ-फुरकत[2], होश-ओ-वहशत[3] क्या नहीं,
कौन कहता है कि रहने की जगह दुनिया नहीं॥

गालिब

वाणी की शक्ति अपरिमित है

जख्म तलवार के गहरे भी हों मिट जाते हैं।
लफ्ज तो दिल में उतर जाते हैं भालों की तरह॥

सागर पालनपुरी

पुरुषार्थसिद्धि के प्रयत्न से ही जीवन सार्थक होता है

किसी की चार दिन की जिन्दगी सौ काम करती है,
किसी की सौ बरस की जिन्दगी से कुछ नहीं होता।

ताहिरा

मृत्यु संसरण का अन्त नहीं

मरके टूटा है कहीं सिलसिला-ए-कैदे-हयात,[4]
फ़क़त इतना है कि जंजीर बदल जाती है।

जीव अनादि से अज्ञानान्धकार में भटक रहा है

ना इब्तिदा[5] की खबर है ना इंतिहा[6] मालूम,
रहा ये वहम कि हम है सो भी क्या मालूम।

हसरत मोहानी

1. चकाचौंध, 2. संयोग-वियोग, 3. समझदारी और पागलपन, 4. जीवन के बन्धन में बँधे रहने का क्रम, 5. आदि, 6. अन्त

13, आनन्द नगर, आधारताल,
जबलपुर-482004 (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवनीत

भगवती आराधना में मनोविज्ञान

●

भारक्कंतो पुरिसो भारं ऊरुहिय णिव्वुदो होइ।
जह तह पयहिय गंथे णिस्संगो णिव्वुदो होइ ।।1172।।

जैसे भार से लदा हुआ मनुष्य भार के उतर जाने पर सुखी होता है वैसे ही परिग्रह से मुक्त हो जाने पर अपरिग्रही भी सुखी होता है।

●

महुलित्तं असिधारं तिक्खं लेहिज्ज जध णरो कोई।
तध विसयसुहं सेवदि दुहावहं इह हि परलोगे ।।1346।।

जैसे कोई मनुष्य मधु से लिप्त तलवार की तीक्ष्ण धार को चाटने पर दुःखी होता है वैसे ही मनुष्य विषयसुख का सेवन करने पर इस लोक और परलोक दोनों में दुःखी होता है।

●

सद्देण मओ रुवेण पदंगो वणगओ वि फरिसेण।
मच्छो रसेण भमरो गंधेण य पाविदो दोसं।।1347।।

शब्द (मधुरगीत) में आसक्त होकर मृग, रूप (दीपक के प्रकाश) में आसक्त होकर पतंगा, स्पर्श (हथिनी के शरीर के स्पर्श) में आसक्त होकर हाथी, रस (स्वाद) में आसक्त होकर मछली और सुगंध में आसक्त होकर भ्रमर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

●

जह कोइ तत्तलोहं गहाय रुट्ठो परं हणामित्ति।
पुव्वदरं सो डज्झदि डहिज्ज व ण वा परो पुरिसो ।।1356।।

तध रोसेण सयं पुव्वमेव डज्झदि हुकलकलेणेव।
अण्णस्स पुणो दुक्खं करिज्ज रुट्ठो ण य करिज्ज ।।1357।।

जैसे कोई क्रुद्ध मनुष्य दूसरे को मारने के लये तपे हुए लोहे को उठाता है उससे दूसरा जले या न जले, स्वयं अवश्य जलता है, वैसे ही दूसरे पर किये गये क्रोध से दूसरा सन्तप्त हो या न हो, क्रोधी मनुष्य स्वयं अवश्य सन्तप्त होता है।

●

दट्ठूण अप्पणादो हीणे मुक्खाउ विंति माणकलिं।
दट्ठूण अप्पणादो अधिए माणं णयंति बुधा।।1370।।

अज्ञानी अपने से हीन मनुष्यों को देखकर मान करते हैं, किन्तु ज्ञानी अपने से बड़ों को देखकर मान दूर करते हैं।

बोधकथा

यमराज को भी डर

● *डॉ. जगदीश चन्द्र जैन*

प्राचीन काल में वाराणसी में महापिंगल नाम का राजा राज्य करता था। वह बड़ा अन्यायी था और दण्ड आदि द्वारा लोगों से रुपया ऐंठ, कोल्हू में पेले जाने वाले गन्ने की तरह प्रजा का शोषण करता था।

महापिंगल बहुत रौद्र, कठोर और दुस्साहसी था, उसके हृदय में रंचमात्र भी दया न थी। वह अपनी रानियों, पुत्र, पुत्री, मन्त्री, ब्राह्मण और गृहपति सभी को अप्रिय था। लोगों को वह हमेशा आँख की किरकिरी के समान, और एड़ी में घुसे हुए काँटे के समान खटकता था।

संयोगवश कुछ समय बाद राजा मर गया। वाराणसी के लोग बहुत प्रसन्न हुए।

उन्होंने सहस्रों गाड़ी लकड़ियों से राजा का दाह-संस्कार किया, और सहस्रों घड़ों जल द्वारा आग को शान्त किया।

नगर के लोगों ने बड़ी सजधज के साथ राजकुमार को सिंहासन पर अभिषिक्त किया। उत्सव की भेरियाँ बजने लगीं, ध्वजाएँ फहरायी गयीं, प्रत्येक द्वार पर मण्डप बनवाये गये, खील फूल बिखेरे गये और लोग मण्डपों में बैठकर आनन्द मनाने लगे। वस्त्राभूषणों से सज्जित राजकुमार, श्वेत छत्र से अलंकृत हो, सुन्दर आसन पर विराजमान हुए।

मन्त्री, ब्राह्मण, गृहपति, राष्ट्रपाल, द्वारपाल आदि अनेक नौकर-चाकर राजा को घेरे खड़े थे।

राजा ने देखा कि द्वारपाल सिसकियाँ भर कर रो रहा है। राजा ने पूछा- 'द्वारपाल! पिताजी के मरने पर सब लोग प्रसन्न हो उत्सव मना रहे हैं। क्या तुझे उनके मरने की प्रसन्नता नहीं है?'

द्वारपाल बोला- महाराज! मैं इसलिए नहीं रो रहा हूँ कि राजा महापिंगल अब इस संसार में नहीं रहे हैं। उनके मरने से तो मुझे आनन्द ही हुआ, क्योंकि जब कभी राजा महल के अन्दर प्रवेश करते या महल से बाहर जाते तो वे मेरे सिर पर जोर-जोर से आठ ठोंसे लगाते थे। लेकिन अब डर इस बात का है कि परलोक में यमराज के साथ भी वे ऐसा ही बर्ताव करेंगे। कहीं ऐसा न हो कि यमराज घबराकर उन्हें फिर से यहाँ वापस भेज दे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

श्रुतपञ्चमी : श्रुत की निश्चयपूजा आवश्यक

श्रुतपञ्चमी श्रुत की पूजा का दिन है। इस दिन श्रुत का अवतार हुआ था। जब सम्पूर्ण श्रुत के धारी आचार्यों का धीरे-धीरे अभाव होने लगा, तब आचार्य-परम्परा से चला आता हुआ अंगों और पूर्वों के एकदेश का ज्ञान (एकदेशश्रुत) आचार्य धरसेन (प्रथम शताब्दी ई.) को प्राप्त हुआ। वे जिस समय सोरठ देश के गिरिनगर पर्वत की चन्द्रगुफा में स्थित थे उस समय उन्हें स्वयं को प्राप्त श्रुत के मरणोपरान्त लुप्त हो जाने का भय हुआ। अतः उन्होंने दक्षिणापथ की महिमानगरी में सम्मिलित हुए आचार्यों को पत्र लिखकर दो योग्य मुनियों को भेजने का आग्रह किया। वहाँ से दो प्रतिभाशाली युवा मुनि उनके पास भेजे गये, जिनके नाम पुष्पदन्त और भूतबलि रखे गये। आचार्य धरसेन ने उन्हें महाकम्मपयडिपाहुड (महाकर्मप्रकृतिप्राभृत) का अध्ययन कराया और बिदा कर दिया। उन्होंने प्राप्त ज्ञान को सूत्रबद्ध किया और उसे षट्खण्डागम नाम दिया। पश्चात् आचार्य भूतबलि ने उसे पुस्तकारूढ़ करके ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी के दिन चतुर्विध संघ के साथ उसकी पूजा की। इसी कारण यह दिन श्रुत पञ्चमी के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इस दिन दिगम्बर जैन प्रति वर्ष शास्त्रों की पूजा करते हैं, उनकी साफ-सफाई और जीर्णोद्धार करते हैं तथा नये वेष्टनों में बाँधकर सुरक्षित करते हैं।

यह श्रुत की व्यवहारपूजा है। निश्चयपूजा है श्रुत के अर्थ को आत्मसात् करना, भावश्रुत को हृदयंगम करना, जिसका फल होता है मिथ्यात्व से मुक्ति। यह शुभ लक्षण है कि वर्तमान युग में श्रुत का अभ्यास बड़े पैमाने पर हो रहा है। श्रावकों में तत्त्वार्थसूत्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, द्रव्यसंग्रह, गोम्मटसार, समयसार, प्रवचनसार आदि ग्रन्थों के स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ी है। साधुसन्तों और पण्डितों के प्रवचनों में उमड़ती हुई भीड़ देखी जाती है। शास्त्रों का प्रकाशन व्यापक स्तर पर हो रहा है। पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा शास्त्रों के रहस्य खोले जा रहे हैं, शंकाओं का समाधान किया जा रहा है, शोधग्रन्थ लिखे जा रहे हैं, संगोष्ठियों में शोध-आलेख पढ़े जा रहे हैं। गोया हर तरह से श्रुत के अर्थ को हृदयंगम करने और कराने की कोशिश की जा रही है।

भारतीय मोक्षमार्गों में स्वाध्याय को परम तप माना गया है 'स्वाध्यायः परमं तपः।' गुरुकुलों में दीक्षान्त समारोह के अवसर पर 'स्वाध्यायान्मा प्रमदः' (स्वाध्याय में प्रमाद मत करना) यह उपदेश देने का नियम था। आचार्य वट्टकेर ने मूलाचार में कहा है-

बारसविधह्मि वि तवे सब्भंतरबाहिरे कुसलदिट्ठे।
ण वि आत्थि णवि य होही सज्झायसमं तवो कम्मं॥409॥

"सर्वज्ञ एवं गणधरादि के द्वारा प्रतिपादित बारह प्रकार के बाह्य और अभ्यन्तर तपों में स्वाध्याय के समान तप न तो है और न होगा।"

आचार्य कुन्दकुन्द स्वाध्याय के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए प्रवचनसार में कहते हैं-

जिणसत्थादो अट्ठे पच्चक्खादीहिं बुज्झदो णियमा।
खीयदि मोहोवचयो तम्हा सत्थं समधिदव्वं ॥86॥

"जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रणीत आगम से प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा जीवादि पदार्थों के स्वरूप को जानने से मिथ्यात्व का विनाश होता है। इसलिये जिनागम का अध्ययन विधिपूर्वक करना चाहिए।"

इस आर्षवचन को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मानना स्वाभाविक है कि द्रव्यश्रुत के अभ्यास से श्रावकों को भावश्रुत की प्राप्ति हो रही होगी, उनके मिथ्यात्व का विलय हो रहा होगा। किन्तु दृश्य उलटा ही दिखाई देता है। श्रुताभ्यास करते हुए भी श्रावकों का एक वर्ग शासन देवी-देवताओं के नाम पर यक्ष-यक्षणियों की पूजा, नवग्रहपूजा, तन्त्रमन्त्र, झाड़फूँक, गण्डाताबीज एवं नीलम पन्ना आदि के प्रयोग द्वारा विघ्नों के विनाश और इष्टफलप्राप्ति की मान्यता के मिथ्यात्व में फँसा हुआ है। सज्जातित्व के नाम पर जैनधर्मावलम्बियों में भी अवैज्ञानिक उपजातियों के भिन्न होने पर परस्पर विवाहसम्बन्ध को धर्मविरुद्ध मानता है और उनसे उत्पन्न सन्तान को वर्णसंकर घोषित करता है, जबकि मिथ्यादृष्टि के साथ उपजाति के समान होने पर किये जाने वाले विवाह को धर्मानुकूल बतलाता है। यह भी मिथ्यात्व में ही विचरण करने का सबूत है।

द्रव्यसंग्रह के टीकाकार ब्रह्मदेव सूरि ने साफ कहा हे कि मंत्रसाधित देवता कुछ भी नहीं कर सकते, न विघ्न उत्पन्न कर सकते हैं, न विघ्नों का विनाश। जो कुछ भी भला-बुरा होता है स्वयं के साता-असाता कर्म के उदय से होता है। वे दृष्टांत द्वारा स्पष्ट करते हैं कि 'क्षुधा, तृषा आदि अठारह दोषों से रहित, अनन्तज्ञानादि गुणों से सहित जो वीतराग सर्वज्ञ देव हैं उनके स्वरूप को न जानने के कारण मनुष्य ख्याति, पूजा, लाभ, रूप, लावण्य, सौभाग्य, पुत्र, स्त्री और राज्यादि सम्पदा की प्राप्ति के लिए जो रागद्वेषयुक्त और आर्त्तरौद्रपरिणाम के धारक क्षेत्रपाल, चण्डिका आदि मिथ्यादेवी-देवताओं की आराधना करता है उसे देवमूढ़ता कहते हैं। ये देवी-देवता कुछ भी फल नहीं देते। इसका प्रमाण यह है कि रावण ने रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी को मारने के लिए बहुरूपिणी विद्या सिद्ध की थी, कौरवों ने पाण्डवों के उन्मूलन के लिए कात्यायनी विद्या को साधा था और कंस ने श्रीकृष्ण के विनाश के लिए अनेक विद्याओं की आराधना की थी, किन्तु ये विद्याएँ उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकीं। इसके विपरीत राम, पाण्डव और कृष्ण ने किसी देवी-देवता की आराधना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं की थी, तथापि निर्मल सम्यग्दर्शन द्वारा उपार्जित पूर्व पुण्य से उनके सभी विघ्न दूर हो गये (द्रव्यसंग्रह, गाथा 41)। श्रुत में ऐसा उपदेश होने पर भी श्रावकों का एक बहुत बड़ा वर्ग उक्त मिथ्यात्व का शिकार है, जिससे स्पष्ट होता है कि हम श्रुत की केवल व्यवहारपूजा करके कर्त्तव्य की इतिश्री समझ रहे हैं, उसकी निश्चयपूजा से हम कोसों दूर हैं।

किन्तु यह नहीं समझ लेना चाहिए कि श्रावकों का जो समुदाय शासन देवी-देवताओं की पूजा नहीं करता, नवग्रहों को नहीं पूजता, मन्त्रतन्त्र के चक्कर में नहीं पड़ता और नीलम-पन्ना आदि रत्नों के प्रयोग को विघ्नविनाशक नहीं मानता, वह मिथ्यात्व से मुक्त है। हकीकत यह है कि वह श्रुत का सघन स्वाध्याय करते हुए भी एक दूसरे प्रकार के मिथ्यात्व में फँसा हुआ है। वह कुन्दकुन्द द्वारा

हिंसारहिये धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे।
णिग्गंथे पावयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं॥मोक्खपाहुड, 90॥

इस गाथा में बतलाये गये गुरु के लक्षण को (कि निर्ग्रन्थ ही गुरु होता है) ताक पर रखकर सग्रन्थ या असंयमी को गुरु मानता है, उसे पूजता है, उसके आगमविरुद्ध एकान्तवादी उपदेश को, उसके द्वारा रचित निश्चयाभासी ग्रन्थों को प्रमाण रूप में स्वीकार करता है, उन्हें आर्षवचनों की अपेक्षा भी प्रधानता देता है और जो सच्चे निर्ग्रन्थ गुरु हैं, उन्हें द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि कहता है। श्रावकों का यह वर्ग मानता है कि आजकल भावलिंगी मुनि हो ही नहीं सकते। इसलिए इस नस्ल के श्रावक मुनियों को नमस्कार करने और आहार आदि देने को निगोद में जाने का कारण मानते हैं। यह वर्ग पुण्य को सर्वथा हेय मानता है और निमित्त को अकिंचित्कर। यह व्रतादि को जड़ शरीर की क्रिया कहता है। सम्यक्त्वपूर्वक शुभोपयोग या व्यवहारमोक्षमार्ग को परम्परया भी मोक्ष का हेतु नहीं मानता, मात्र बन्ध का ही कारण मानता है। इस वर्ग के श्रावक मानते हैं कि जो कुछ होना है वह पूर्वनियत है, जीव उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं कर सकता है। अर्थात् वह नियत-अनियत के अनेकान्त को भी अमान्य करता है। इस तरह यह वर्ग मात्र श्रुत के ही अभ्यास को मोक्ष का एकमात्र पौरुष मानते हुए और रात दिन स्वाध्याय करते हुए भी भावश्रुत से शून्य है, अर्थात् मिथ्यात्व का शिकार है जिससे सिद्ध होता है कि श्रावकों का यह वर्ग भी श्रुत की निश्चयपूजा से परहेज करता है।

और जो श्रावक इन दोनों प्रकार के मिथ्यात्वों से मुक्त हैं, उनके बारे में यह भ्रम नहीं पाल लेना चाहिए कि वे सभी सम्यग्दृष्टि हैं। उनमें से अधिकांश श्रावक तीसरे प्रकार के मिथ्यात्व से ग्रस्त हैं। उनकी दृष्टि में धन, सत्ता, भोग और ख्याति (money, power, pleasure and popularity) ही जीवन के सारभूत तत्त्व हैं। वे पूजा-भक्ति, तीर्थवन्दना, साधुसन्तों की सेवा करते हुए दिखाई देते हैं तो यह नहीं समझ लेना चाहिए कि यह सब वे मोक्ष की आकांक्षा से करते हैं। वस्तुतः इससे अर्जित पुण्य के द्वारा वे उपर्युक्त चार वस्तुएँ ही जुगाड़ना चाहते हैं। उनकी दृष्टि के सम्यक्त्व या मिथ्यात्व का पता इस बात से चलता है कि वे धन कमाने के लिए किन तरीकों का इस्तेमाल करते हैं और हम देखते हैं कि उनके तरीके अपवित्र हैं, समाजविरोधी और धर्मविरोधी हैं। अतः उनकी दृष्टि विषयों को ही सारभूत मानने के तीसरे प्रकार के मिथ्यात्व से ग्रस्त है। इससे जाहिर है कि वे द्रव्यश्रुत की आराधना करते हुए भी भावश्रुत से वंचित हैं अर्थात् वे श्रुत की निश्चयपूजा नहीं कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त यह वर्ग यद्यपि सज्जातित्व के नाम पर जैनधर्मानुयायियों में उपजाति भिन्न होनेपर पारस्परिक विवाह को धर्मविरुद्ध नहीं मानता, तथापि उपजातियों में परस्पर उच्च-नीच, श्रेष्ठ-हीन का भेदभाव करता है। फलस्वरूप साधर्मी होने के नाते जहाँ प्रत्येक जैन के प्रति वात्सल्यभाव धारण करना चाहिए, वहाँ उपजाति की भिन्नता के कारण तीव्र द्वेषभाव रखता है। इस मामले में श्रावकों के ये तीनों वर्ग एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। उपजातीय विद्वेष को ये इस सीमा तक ले आये हैं कि इन्होंने साधु-सन्तों को भी अपने-पराये में बाँट लिया है और उन पर भी अपने विद्वेष-विष का असर डालने की कोशिश कर रहे हैं। इस घातक प्रवृत्ति से अल्पसंख्यक जैन समाज को विघटन का खतरा है। यह उपजातीय विद्वेष श्रुताराधना करते हुए भी महामिथ्यात्व में फँसे होने का और निश्चय श्रुतपूजा से दूर रहने का जबर्दस्त सबूत है।

कुछ श्रावक व्रत ग्रहण कर लेते हैं, प्रतिमाएँ धारण कर लेते हैं। फिर उन्हीं का उन्हें अभिमान हो जाता है। वे अकड़कर चलने लगते हैं, आसमान की ओर नजरें कर लेते हैं, सब को तुच्छ समझने का भाव उनकी आँखों में झलकने लगता है, 'धर्मी सौं गोवच्छ प्रीति' और 'गुणिषु प्रमोदं' उन्हें आगम विरुद्ध प्रतीत होने लगते हैं। साधारण श्रावकों के बीच वे अपनी तुलना मुनियों से करते हैं। गोया व्रत धारण करने से उनके मद का आलम्बन मात्र बदलता है। आगम का कथन है कि आठ मदों में से एक भी मद की मौजूदगी हो तो मिथ्यात्व का अभाव नहीं होता। यह दशा श्रावकवर्ग की श्रुताराधना करते हुए भी मिथ्यात्व ग्रस्त बने रहने की कहानी कहती है। स्पष्ट है कि इस प्रकार के श्रावक भी श्रुत की निश्चयपूजा में रुचि नहीं रखते।

श्रुताभ्यासियों में इन चार प्रकार के मिथ्यात्वों की मौजूदगी श्रुत की व्यवहारपूजा के साथ निश्चयपूजा की आवश्यकता प्रतिपादित करती है। श्रुतपञ्चमी के पर्व पर इस ओर ध्यान जाना चाहिए। सन्तोष की बात है कि इन विभिन्न श्रावकवर्गों के बीच श्रावकों का अल्पसंख्यक वर्ग श्रुत की निश्चयपूजा भी कर रहा है। वह उपर्युक्त चारों प्रकार के मिथ्यात्वों से मुक्त है, क्योंकि वह श्रुत की निश्चयपूजा करने वाले सच्चे निर्ग्रन्थ गुरुओं के चरणों का निर्व्याज अनुगामी है। ऐसे सच्चे निर्ग्रन्थ गुरू इस युग में भी भारतभूमि को अलंकृत कर रहे हैं।

● *रतनचंद्र जैन*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवचन

ज्ञान और अनुभूति

● *आचार्य श्री विद्यासागर*

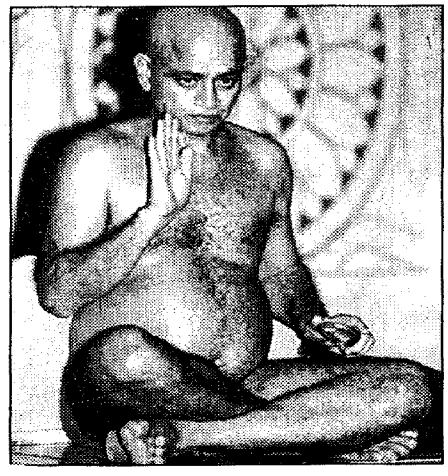

अक्षय तृतीया से जो यह श्रुत की वाचना का मंगल कार्य प्रारंभ हुआ था वह इस मंगलमय श्रुतपंचमी के अवसर पर सानंद सम्पन्न हुआ। आत्मा के पास यही एक ऐसा धन है जिसके माध्यम से धनी कहलाता है। जब यह श्रुतरूपी धन जघन्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है तो वह आत्मा दरिद्र हो जाता है। आगम ग्रंथों की वाचना के समय निगोदिया जीव का प्ररूपण करते समय जो बताया गया उसे सुनकर लग रहा था कि आत्मा का यह पतन निगोद में अंतिम छोर को छू रहा है।

लेकिन दरिद्रता का अर्थ धन का अभाव होना नहीं है, बल्कि धन की न्यूनता या अत्यधिक कमी होना है। एक पैसा भी पैसा है, वह रुपये का अंश है। रुपया वह भले ही न हो लेकिन रुपये की प्राप्ति में सहयोगी है। इसी प्रकार ज्ञान का पतन कितना भी हो किन्तु जीव में कभी ज्ञान का अभाव नहीं हो सकता। यदि वास्तव में ज्ञान को धन मानकर हम उसका संरक्षण और संवर्धन करें तो आत्मा की ख्याति बढ़ती चली जायेगी। आत्मा में प्रकाश आ जायेगा कि वह विश्व को भी प्रकाशित कर देगा।

श्रुतपंचमी के दिन अपने चिंतन के माध्यम से श्रुत के बारे में बात समझनी चाहिए। स्पर्शन इन्द्रिय का विषय आठ प्रकार का स्पर्श है, रसना इन्द्रिय का विषय पाँच प्रकार का रस है, घ्राण इन्द्रिय का विषय दो प्रकार की गंध है, चक्षु इन्द्रिय का विषय पांच प्रकार का रूप है और श्रोत्र इन्द्रिय का विषय है शब्द। पांचों इन्द्रियाँ हमारे पास हैं, लेकिन सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये जब पंडित जी (पं. कैलाशचन्द्र जी सिद्धांत शास्त्री बनारस) वाचना कर रहे थे प्रातः काल, तब जयधवलाकार ने बहुत अच्छे ढंग से कहा कि पाँच इन्द्रियों का होना आवश्यक है पर इतना ही पर्याप्त नहीं है।

शब्द सुनने के लिये कान पर्याप्त हैं लेकिन तद्विषयक जानकारी के लिए श्रुत के लिए मन आवश्यक है। श्रुत यह मन का विषय है। मन लगाकार जब हम शब्दों को सुन लेते हैं तब कहीं जाकर आचार्यों के भाव हमारी समझ में आते हैं। मन लगाने का पुरुषार्थ अनिवार्य है। केवल वक्ता अपनी बात को रखता जाये और श्रोता मात्र सुनता जाये, मन न लगाये तो कल्याण संभव नहीं है।

यहाँ अभी-अभी कई लोगों ने कहा कि यह वाचना जो हुई है पंडित जी ने अच्छे ढंग से इसे सुनाया है। यह सारा का सारा शब्द ही तो है जो कानों से सुनने में आया है। शब्द पढ़ने में नहीं आ सकते, पढ़ने में जो जाते हैं वह केवल उन शब्दों के संकेत हैं और ये संकेत सारे के सारे अर्थ को लेकर हैं। श्रुतभक्ति में आया है- "अरिहंत भासियत्थं गणधरदेवेहिं गंथियं सम्मं, पणमामि भत्ति-जुत्तो सुदणाणमहोवयं सिरसा।" अर्थात् अरिहंत परमेष्ठी के द्वारा अर्थ रूप श्रुत का व्याख्यान हुआ है और इसे गणधर देव ने गूंथकर ग्रंथ का रूप दिया है। ऐसे महान् श्रुत को भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर हम प्रणाम करते हैं। अर्थ हमेशा अनन्तात्मक होता है और अनंत को ग्रहण करने की क्षमता हमारे पास नहीं है। उस अनंत को हम सुन नहीं सकते। मात्र शब्द सुनने में आ जाते हैं। शब्द इस अनंत अर्थ को अभिव्यक्त करने में सहायक बनते हैं। अनंत की अभिव्यक्ति श्रुत के द्वारा शब्दों के माध्यम से की जाती है।

बहुत छोटी सी किताब है लेकिन इसके अर्थ की ओर जब देखते हैं तो लोक और अलोक दोनों में जाकर भी हमारा ज्ञान छोर नहीं छू पाता। वह ज्ञेयरूपी महासागर जिसके ज्ञान में अवतरित हो जाता है वह समाधिस्थ हो जाता है। उस ज्ञान की महिमा अपरम्पार है। उस अर्थ की प्राप्ति के लिए जो परमार्थभूत है यह सब संकेत दिये गये हैं। इन संकेतों को सचेत होकर यदि हम पकड़ लेते हैं तो ठीक है अन्यथा कुछ नहीं है। जिसका मन मूर्छित है अर्थात् पंचेन्द्रिय के विषयों से प्रभावित है वह इन संकेतों को पकड़ कर भी भावों में अवगाहित नहीं हो पाता। अंतर्मुहूर्त के भीतर वह जो सर्वार्थसिद्धि के देव हैं उन्हें भी जिस सुख का अनुभव नहीं हो सकता, उससे बढ़कर सुख का अनुभव एक संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य जो संयत है या संयतासंयत है, वह अनुभव कर रहा है।

जैसे सूर्य प्रकाश देता है और प्रकाश से कार्य होता है, किन्तु सूर्य के प्रकाश देने मात्र से हमारा कार्य पूरा नहीं होता। सूर्य का

उन्नति हम चाहते हैं, लेकिन उन्नति कैसे होगी यह जानना चाहिए। श्रुत को आधार बनाकर चलेंगे तभी श्रुत के द्वारा वहाँ पहुँच जायेंगे जहाँ तक महावीर भगवान् पहुँचे हैं। कैवल्य होने से पूर्व बारहवें गुणस्थान के अंतिम समय तक श्रुत का आधार प्रत्येक साधक को लेना अनिवार्य है। मात्र उपदेश देने या सुनने से ज्ञान नहीं बढ़ता। ज्ञान को ऊर्ध्वगमन संयम के द्वारा मिलता है। हम श्रुतज्ञान को केवलज्ञान में ढाल सकते हैं। लेकिन आज तक कोई व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जिसने संयम के बिना ही श्रुतज्ञान को केवलज्ञान रूप दिया हो।

सन् 1981 में आचार्यश्री के द्वारा दिया गया प्रवचन श्रुतपञ्चमी के विशेष संदर्भ में प्रस्तुत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाश पाकर हमें स्वयं पुरुषार्थ करना होगा। दूसरी बात, प्रातः कालीन सूर्य जब किरणें फेंकता है तब हमारी छाया विपरीत दिशा में पड़ती है और सायंकाल जब अस्ताचल में जाता है तब भी हमारी छाया विपरीत दिशा में पड़ती है लेकिन वही सूर्य जब मध्यान्ह में तपता है तब हमारी छाया परपदार्थों की ओर न जाकर हमारे चरणों में ही रह जाती है। यही स्थिति श्रुत की है। जब हमारा श्रुतज्ञान बाह्य पदार्थों में न जाकर आत्मस्थ हो जाता है तभी ज्ञान को उपलब्धि मानी जाती है। हम मध्य में रहे और मध्यस्थ रहें तो यह मध्याह्न हमारे जीवन के लिए कल्याणकारी है।

जब तेज धूप पड़ती है और पंडित जी (पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य सागर) बार-बार कहते हैं कि महाराज बाहर बहुत ततूरी है। ततूरी का अर्थ बहुत अच्छा उन्होंने बताया था। मुझे मालूम नहीं था कि ततूरी का अर्थ इतना गम्भीर है। तप्त+उर्वी = तप्तूर्वी (ततूरी)। जिस समय उर्वी अर्थात् पृथ्वी तप जाती है उस समय बोलते हैं बहुत ततूरी है। इस ततूरी के समय मध्यान्ह में किसान लोग गर्मी के दिनों में भी शान्ति का अनुभव करते हैं। शान्ति का अनुभव इसलिए करते हैं कि अब मृगशीतला आ गयी और कुछ दिन के उपरान्त वर्षा आयेगी, बीज बोयेंगे, फसल लहलहायेगी। यदि अभी धरती नहीं तपेगी तो वर्षा नहीं आयेगी।

इसी प्रकार जब तक श्रुत के साथ हम समाधिस्थ होकर अपने को नहीं तपायेंगे तब तक अनंत केवलज्ञानरूपी फसल नहीं आयेगी। जिस समय श्रुत आत्मस्थ हो जायेगा तब आत्मा नियम से विश्रुत हो जायेगी। विश्रुत का अर्थ है विख्यात होना। तब आत्मा की तीन लोक में ख्याति फैल जायेगी। तीन लोक में उसी की ख्याति फैलती है जो संपूर्ण श्रुत को पीकर के विश्रुत हो गया। विश्रुत का दूसरा अर्थ श्रुतभाव या श्रुत से ऊपर उठ जाना भी है। तो जो श्रुत से ऊपर उठे हुए हैं वे ही केवलज्ञानी भगवान तीन लोक में पूज्य है।

श्रुतज्ञान वास्तव में आत्मा का स्वभाव नहीं है, किन्तु आत्म-स्वभाव पाने के लिए श्रुतज्ञान है। उस श्रुतज्ञान के माध्यम से जो अपने आपको तपाता है वह केवल ज्ञान को उपलब्ध कर लेता है। श्रुतज्ञान तो आवरण में से झाँकता हुआ प्रकाश है। जब मेघों का पूर्ण अभाव हो जाता है तब जो सूर्य अपने सम्पूर्ण प्रकाश के साथ बाहर दिखने लगता है ऐसा ही वह केवलज्ञान है। श्रुतज्ञानावरणी कर्म का जब पूर्ण क्षय होगा तब आत्मा में एक नई दशा उत्पन्न होगी। इसी दशा को प्राप्त करने के लिए यह श्रुत है।

'श्रुतमनिन्द्रियस्य' मन का विषय श्रुत है। मन को अनंग भी बोलते हैं। वह भीतर रहता है उसके पास अंग नहीं है किन्तु वह अंग के भीतर अंतरंग होता है। इसी अंतरंग के द्वारा ही सब कार्य होता है। यदि अंतरंग विकृत हो जाए और बहिरंग साफ सुथरा रहे तो भी कार्य नहीं होगा। जिसका अंतरंग शुद्ध होगा उसके लिए श्रुत अंतर्मुहूर्त में पूरा का पूरा प्राप्त हो जाता है। अंतर्मुहूर्त में ही उसे कैवल्य भी प्राप्त हो सकता है। वर्तमान में यह अवसर्पिणी काल होने से श्रुत निरंतर घटता चला जा रहा है। वह समय भी आया जब धरसेन आचार्य के जीवन काल में एक-एक अंग का अंश ज्ञान शेष रह गया और आज उसका शतांश क्या सहस्रांश भी शेष नहीं रहा।

आज सुबह पढ़ लेते हैं शाम को पूछो तो उसमें से एक पंक्ति भी ज्यों की त्यों नहीं बता सकते। थोड़ा सा मन इधर उधर चला गया, उपयोग फिसल गया तो कहीं के कहीं पहुँच जाते हैं। क्या विषय चल रहा था, पता तक नहीं पड़ता। हमारे पूर्व में हुए आचार्यों की उपयोग की स्थिरता, उनका श्रुत के प्रति बहुमान आदि देखते हैं तो उसमें से हमारे पास एक कण मात्र भी नहीं है, किन्तु भाव-भक्ति और श्रद्धा ही एकमात्र हमारे पास साधन है। यह श्रद्धा-विश्वास हमें नियम से वहीं तक ले जाएगा जहाँ तक पूर्व आचार्य गये हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द देव ने समयसार में कहा है कि 'सद्दो णाणं ण हवदि जह्मा सद्दो ण याणए किंचि, तह्मा अण्णं णाणं अण्णं सद्दं जिणा विंति। अर्थात् शब्द ज्ञान नहीं है क्योंकि शब्द कुछ भी नहीं जानता इसलिए ज्ञान भिन्न है। ऐसा जिनेन्द्र भगवान का कथन है। यहाँ आशय यही है कि शब्द मात्र साधन है। उसके माध्यम से हम भीतरी ज्ञान को पहचान लें यही उसकी उपयोगिता है अन्यथा वह मात्र कागज है। जैसे भारतीय मुद्रा है वह कागज की होकर भी भारत में मूल्यवान है, दूसरे स्थान पर कार्यकारी नहीं है। वहाँ उसको कागज ही माना जायेगा। इसी प्रकार यदि हम श्रुत का उपयोग भिन्न क्षेत्र में लेते हैं तो उसका कोई मूल्य नहीं है। यदि स्वक्षेत्र में काम लेते हैं तो केवलज्ञान की उत्पत्ति में देर नहीं लगती। अर्थात् कोई भी क्रिया करो विधि के अनुसार करो। दान इत्यादि क्रिया दाता और पात्र की विशेषता द्रव्य और विधि की विशेषता, से विशिष्ट हो जाती है। फलवती हो जाती है। औषधि सेवन में जैसे वैद्य के अनुसार खुराक और अनुपान का ध्यान रखा जाता है ऐसा ही प्रत्येक क्रिया के साथ सावधानी आवश्यक है।

स्वाध्याय करने का कहने से प्रायः ऐसा होता है कि जो समय स्वाध्याय के लिए निषिद्ध है उन समयों में भी स्वाध्याय करने लगते हैं। सिद्धांतग्रंथों के पठन पाठन का अष्टमी चतुर्दशी को निषेध किया है तो सावधानी रखना चाहिए। शास्त्र के प्रति बहुमान, उसके प्रति विनय, उनके लिए निश्चित काल आदि सभी आपेक्षित हैं। पढ़ना उसे ग्रहण और धारण करना सभी हो सके इसका ख्याल रखना चाहिए। एक वर्ष में जो शांति से स्वाध्याय करना चाहिए उसे एक माह में कर ले तो क्या होगा मात्र पढ़ना होगा, ग्रहण और धारण नहीं होगा।

श्रुतज्ञान हमारे लिये बहुत बड़ा साधन है। श्रुतज्ञान के बिना आज तक किसी को भी मुक्ति नहीं मिली और न आगे मिलेगी। अवधिज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान का मुक्ति में उतना महत्त्व नहीं है जितना श्रुतज्ञान का है। केवल ज्ञान भी उसी का फल है। यदि इस महान् श्रुत का हम गलत उपयोग करते हैं तो अर्थ का अनर्थ हो सकता है। हमें श्रुत के माध्यम से आजीविका नहीं चलानी चाहिए। इसे व्यापार का साधन नहीं बनाना चाहिए। यह पवित्र जिनवाणी है। वीर भगवान के मुख से निकली है। जो श्रुत प्राप्त है उसके माध्यम से स्व-पर कल्याण करना चाहिए।

श्रुत का फल बताते हुए परीक्षामुख सूत्र में आचार्य माणिक्यनंदी जी कहते हैं कि 'अज्ञान निवृत्तिर्हानोपानोपेक्षाश्च फलम्' अर्थात् श्रुत की सार्थकता तभी है जब हमारे अंदर बैठा हुआ मोह रूपी अज्ञान अंधकार समाप्त हो जाय और हेय उपादेय की जानकारी प्राप्त करके हेय से बचने का प्रयास किया जाये और उपादेय को ग्रहण किया जाय अर्थात् चारित्र की ओर कदम बढ़ना चाहिये। भले ही अल्प ज्ञान हो लेकिन उसके माध्यम से हमें संयमित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होकर सदा गतिशील रहना चाहिये। यदि संयम की ओर गति होती रही तो हमारी प्रगति और उन्नति होने में देर नहीं है। हमारा अल्पज्ञान भी संयम के माध्यम से स्थिरता पाकर एक अंतर्मुहूर्त में अनंत ज्ञान में परिणत हो सकता है।

बंधुओ! आज यह पंचमकाल है इसमें नियम से ज्ञान में, आयु में, शरीर और अन्य मोक्षमार्ग में सहयोगी अच्छी सामग्री में ह्रास होता जायेगा, अतः अपने अल्प श्रुत (क्षयोपशम) की ओर ध्यान न देकर ध्येय की ओर बढ़ने का प्रयास करना चाहिये। जिस प्रकार नदी छोटी होकर भी एक दिन समुद्र की दिशा में बढ़ने के कारण समुद्र में मिलकर समुद्र का रूप धारण कर लेती है, उसी प्रकार जिसकी दृष्टि मुक्ति की ओर हो गयी है उसका भी एक दिन ऐसा आयेगा कि केवलज्ञान रूपी महान सागर में समा जायेगा। यही एक मात्र उद्देश्य रहना चाहिये, सम्यक् श्रुतज्ञान से आपूरित हर आत्मा के इसी भाव को हमने एक कविता में बांधा है-

धरा से फूट रहा है/नवजात है/और पौधा/धरती से पूछ रहा है/कि/यह आसमान को कब छूयेगा/ छू सकेगा क्या नहीं/तूने पकड़ा है/गोद में ले रखा है इसे/छोड़ दे/ इसका विकास रुका है/ओ माँ/माँ की मुस्कान बोलती है/भावना फलीभूत हो बेटा/आस पूरी हो/ किन्तु आसमान को छूना/आसान नहीं है/मेरे अन्दर उतर कर/तब छूयेगा/गहन गहराइयाँ/तब कहीं संभव होगा/आसमान को छूना/

ऊँचाइयों की ओर यात्रा उस पौधे की तभी संभव है जब वह पौधा धरती की गहन गहराइयों में उतरेगा। ध्यान रहे विकास दोनों ओर चलता रहता है। भले ही वह पौधा आधा नीचे की ओर चला गया पर धरती माँ कहती है कि आसमान में ऊँचे जाना तभी संभव है जब धरती के भीतर जो कठोरता है उसको भी भेदकर भीतर जाने का साहस करेगा। पौधा जैसा आकाश में ऊपर हवा में हिलता रहता है, जड़ में भी ऐसा हिलने लग जाये तो धराशायी हो जायेगा। पेड़ धरती से संबंध छोड़ दे तो जीवन बर्बाद हो जाता है।

इसी प्रकार जिन वाणी माँ से हमारा संबंध है। बंधुओ! जीवन जब तक रहे तब तक जिनवाणी माता को कभी मत भूलना और जिनवाणी माँ को भूलकर अन्यत्र कहीं मत जाना, अन्यथा पेड़ की तरह दशा होगी। उन्नति हम चाहते हैं लेकिन उन्नति कैसे होगी यह जानना चाहिए। श्रुत को आधार बनाकर चलेंगे तभी श्रुत के द्वारा वहाँ पहुँच जायेंगे जहाँ तक महावीर भगवान पहुँचे हैं। कैवल्य होने से पूर्व बारहवें गुणस्थान के अंतिम समय तक श्रुत का आधार प्रत्येक साधक को लेना अनिवार्य है। थोड़ा सा श्रुत आने लगा तो अहंकार मत करो। अहंकार करना नादानी है। श्रुत की विनय करना, आदर करना और जिस रूप में बताया है उसी रूप में करना आवश्यक है।

ज्ञान का प्रयोजन ध्यान है और ध्यान का प्रयोजन केवलज्ञान है, अनंत सुख और शान्ति है। इसी को पाने का ध्येय बनाकर ज्ञान का आदर हमें करना चाहिये। हमारे ज्ञान में यदि अस्थिरता रहेगी तो हमारी यात्रा उर्ध्वगामी नहीं होगी। जैसे-जैसे ऊपर जायेंगे वैसे-वैसे देखने में आयेगा कि आसमान असीम है, ज्ञान का पार नहीं है। कैवल्यरूपी निरावरण ज्ञान का आसमान असीम है। यही हमारा साध्य है। इसी को पाने के लिए गणधर स्वामी जैसे महान् आत्मा और कुन्दकुन्द जैसे महान् आचार्य हमें निरन्तर ध्यान और आत्मलीनता की ओर प्रेरित करते हैं।

पानी को निम्नगा माना गया है। वह नीचे की ओर बहता है। जल का यह स्वभाव है। लेकिन जल का यदि कुछ उपयोग करना है, बिजली बनाना है या सिंचन के लिए नहरें बनाना हैं तो क्या करते हैं? बाँध बनाते हैं। जल की यात्रा तब भी नहीं रुकती । वह अब नीचे न जाकर ऊपर बढ़ने लगता है। ज्ञानोपयोग की धारा भी निरन्तर बहती रहती है। बहने वाले उपयोग का इतना महत्त्व नहीं है जितना कि जब वह उर्ध्वगमन कर रहा है तब महत्त्वपूर्ण होता है। श्रुतज्ञान होने पर ध्यान रूपी बाँध के द्वारा उस ज्ञान को ऊपर की ओर ले जाना ही उपलब्धि है। इसके लिये महान संयम की आवश्यकता है। श्रुतज्ञान का सदुपयोग यही है कि उसको संयम का बाँध बाँधकर ऊपर उठा लेना।

कैसे ऊपर उठाना? तो ऐसे जैसे पंडित जी वाचना के समय लब्धि स्थानों के बारे में बता रहे थे कि श्रेणी कैसे चढ़ी जाती है। किसी प्रकार साधक अपनी साधना को ऊपर उठाता जाता है। वह अल्प समय में ही भावों में विशुद्धता लाता है और देखते-देखते ऊपर चढ़ जाता है। आप भी चाहें तो संयमित होकर एक-एक गुणस्थान ऊपर चढ़ सकते हैं। यही श्रुतज्ञानरूपी प्रवाह में संयम का बाँध बाँधकर स्वयं को ऊँचा उठाने का उपाय है। संयम रूपी बाँध में बँधे हुए श्रुत की यही महिमा है।

जैसे जल को तपाने पर वह वाष्प बनकर ऊपर चला जाता है, उसे किसी आधार की आवश्यकता नहीं होती, इसी प्रकार जब कोई साधक, साधना करते-करते छद्मस्थ अवस्था की सीमा को पार कर जाताहै तब अंतरिक्ष में ऊपर उठ जाता है। केवलज्ञान प्राप्त होते ही धरती से ऊपर उठ जाताहै और आत्मा की अनंत ऊँचाइयाँ छू लेता है। प्रत्येक सम्यग्दृष्टि का यही एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए कि मेरा जो श्रुतज्ञान उपलब्ध है, इसी में मुझे संतुष्ट होकर नहीं बैठ जाना है, किन्तु इस ज्ञान के माध्यम से निरावरित केवलज्ञान को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना है।

मात्र उपदेश देने या सुनने से ज्ञान नहीं बढ़ता। ज्ञान को उर्ध्वगमन संयम के द्वारा मिलता है। हम श्रुतज्ञान को केवलज्ञान में ढाल सकते हैं। लेकिन आज तक कोई व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जिसने संयम के बिना ही श्रुतज्ञान को केवलज्ञान का रूप दिया हो। श्रुत को केवल ज्ञान का साक्षात् कारण माना है। उसी श्रुत की आराधना आप लोगों ने एक डेढ़ माह लगातार सिद्धांत ग्रंथों के माध्यम से की है। जिस जिनवाणी को गुफाओं में बैठकर धरसेन, पुष्पदंत-भूतबली और वीरसेन आचार्य जैसे महान् श्रुत सम्पन्न आचार्यों ने सम्पादित किया है, उसे आज आप सभी सुख सुविधाओं के बीच रहकर सुन रहे हैं, तो कोई बात नहीं। इस प्रकार के ध्यान-अध्ययन की साधना करते करते एक दिन आपको वह समय भी उपलब्ध हो सकता है जिस दिन संयमपूर्वक ज्ञान की आराधना के माध्यम से कैवल्य की प्राप्ति होगी।

अंत में उन गुरुवर श्री ज्ञानसागर जी महाराज का स्मरण कर रहा हूँ. जिनके परोक्ष आशीर्वाद से ही ये सारे कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो रहे हैं। उन्हीं की स्मृति में अपनी भावना समर्पित करता हूँ। 'तरणि ज्ञानसागर गुरो, तारो मुझे ऋषीश! करुणाकर करुणा करो, कर से दो आशीष।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक् श्रुत

● स्व. सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्रजी शास्त्री

प्रवाह की अपेक्षा श्रुत अनादि है। इसकी महिमा की व्याख्या करते हुए जीवकाण्ड में श्रुतज्ञान की मुख्यता से कहा है कि केवल ज्ञान और श्रुतज्ञान में प्रत्यक्ष और परोक्ष का ही भेद है, अन्य कोई भेद नहीं। ऐसा नियम है कि केवलज्ञानविभूति से सम्पन्न भगवान तीर्थंकर परमदेव अपनी दिव्यध्वनि द्वारा अर्थरूप से श्रुत की प्ररूपणा करते हैं और मत्यादि चार ज्ञान के धारी गणधरदेव अपनी सातिशय प्रज्ञा के माहात्म्यवश अंगपूर्वरूप से अन्तर्मूहूर्त में उसका संकलन करते हैं। अनादि काल से सम्यक् श्रुत और श्रुतधरों की परम्परा का यह क्रम है।

इस नियम के अनुसार वर्तमान अवसर्पिणी के चतुर्थ काल के अंतिम भाग में अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर और उनके ग्यारह गणधरों में प्रमुख गणधर गौतमस्वामी हुए। भावश्रुत पर्याय से परिणत गौतमगणधर ने ग्यारह अंग और चौदह पूर्वों की रचना कर उन्हें लोहाचार्य को दिया। लोहाचार्य ने जम्बूस्वामी को दिया। इसके बाद विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु ये पाँचों आचार्य परिपाटी क्रम से चौदहपूर्व के धारी हुए। तदन्तर विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयाचार्य, नागाचार्य, सिद्धार्थदेव, धृतिसेन, विजयाचार्य, बुद्धिल, गंगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह आचार्य परिपाटी क्रम से ग्यारह अंग और उत्पादपूर्व आदि दस पूर्वों के धारक तथा शेष चार पूर्वों के एकदेश धारक हुए। इसके बाद नक्षत्राचार्य, जयपाल, पाण्डुस्वामी, ध्रुवसेन और कंसाचार्य ये पाँचों ही आचार्य परिपाटी क्रम से सम्पूर्ण ग्यारह अंगों के और चौदह पूर्वों के एकदेश धारक हुए। तदनन्तर सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य ये चारों आचार्य सम्पूर्ण आचारांग के धारक और शेष अंगों के तथा पूर्वों के एकदेश के धारक हुए।

आचार्य धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबलि

तदनन्तर सभी अंग-पूर्वों का एकदेश ज्ञान आचार्य परम्परा से आता हुआ धरसेन आचार्य को प्राप्त हुआ। ये सौराष्ट्र देश के गिरिनगर पत्तन के समीप ऊर्जयन्त पर्वत की चन्द्रगुफा में निवास करते हुए ध्यान अध्ययन में तल्लीन रहते थे। इनके गुणों का ख्यापन करते हुए वीरसेन स्वामी ने (धवला पु.1) लिखा है कि वे परवादीरूपी हाथियों के समूह के मद का नाश करने के लिए श्रेष्ठ सिंह के समान थे और उनका मन सिद्धान्तरूपी अमृतसागर की तरंगों के समूह से धुल गया था। वे अष्टांग महानिमित्त शास्त्र में भी पारगामी थे। वर्तमान में उपलब्ध श्रुत की रक्षा का सर्वाधिक श्रेय इन्हीं को प्राप्त है। अपने जीवन के अंतिम काल में यह भय होने पर कि मेरे बाद श्रुत का विच्छेद होना संभव है, इन्होंने प्रवचन वात्सल्यभाव से महिमानगरी में सम्मिलित हुए दक्षिणा पथ के आचार्यों के पास पत्र भेजा। उसे पढ़कर उन आचार्यों ने ग्रहण और धारण करने में समर्थ नाना प्रकार की उज्ज्वल और निर्मल विनय से विभूषित अंगवाले, शीलरूपी माला के धारक,देश-कुल-जाति से शुद्ध, समस्त कलाओं में पारंगत ऐसे दो साधुओं को आन्ध्रप्रदेश में बहनेवाली वेणा नदी के तट से भेजा।

जब ये दोनों साधु मार्ग में थे, आचार्य धरसेन ने अत्यन्त विनयवान् शुभ्र दो बैलों को स्वप्न में अपने चरणों में विनतभाव से पड़ते हुए देखा। इससे सन्तुष्ट हो आचार्य धरसेन ने 'श्रुतदेवता जयवन्त हो' यह शब्द उच्चारण किया। साथ ही उन्होंने 'मुझे सम्यक् श्रुत को धारण और ग्रहण करने में समर्थ ऐसे दो शिष्यों का लाभ होने वाला है' यह जान लिया।

जिस दिन आचार्य धरसेन ने यह स्वप्न देखा था उसी दिन वे दोनों साधु आचार्य धरसेन को प्राप्त हुए। पादवन्दना आदि कृतिकर्म से निवृत्त हो और दो दिन विश्राम कर, तीसरे दिन वे दोनों साधु पुनः आचार्य धरसेन के पादमूल में उपस्थित हुए। इष्ट कार्य के विषय में जिज्ञासा प्रकट करने पर आचार्य धरसेन ने आशीर्वादपूर्वक दोनों को सिद्ध करने के लिए एक को अधिक अक्षरवाली और दूसरे को हीन अक्षरवाली दो विद्याएँ दीं और कहा इन्हें उपवास धारण कर सिद्ध करो। विद्याएँ सिद्ध होने पर उन दोनों साधुओं ने देखा कि एक विद्या की अधिष्ठात्री देवी के दाँत बाहर निकले हुए हैं और दूसरी विद्या की अधिष्ठात्री देवी कानी है। यह देखकर उन्होंने मंत्रों को शुद्ध कर पुनः दोनों विद्याओं को सिद्ध किया। इससे वे दोनों विद्यादेवियाँ अपने स्वभाव और अपने सुन्दर रूप में दृष्टिगोचर हुईं। तदनन्तर उन दोनों साधुओं ने विद्या सिद्धि का सब वृत्तान्त आचार्य धरसेन के समक्ष निवेदन किया। इससे उन दोनों साधुओं पर अत्यन्त प्रसन्न हो, उन्होंने योग्य तिथि आदि का विचार कर उन्हें ग्रन्थ पढ़ाना प्रारंभ किया। आषाढ़ शुक्ला ।। के दिन पूर्वाह्नकाल में ग्रन्थ-अध्यापन समाप्त हआ।

जब इन दोनों साधुओं ने विनयपूर्वक ग्रन्थ समाप्त किया तब भूतजाति के व्यन्तर देवों ने उनकी पूजा की। यह देख आचार्य धरसेन ने एक का नाम पुष्पदन्त और दूसरे का नाम भूतबलि रखा।

बाद में वे दोनों साधु गुरु की आज्ञा से वहाँ से रवाना होकर अंकलेश्वर आये और वहाँ वर्षाकाल तक रहे। वर्षायोग समाप्त होने पर पुष्पदन्त आचार्य बनवास देश को चले गये और भूतबलि आचार्य द्रविण देश को गये।

बाद में पुष्पदन्त आचार्य ने जिनपालित को दीक्षा देकर तथा वीसदि सूत्रों की रचना कर और जिनपालित को पढ़ाकर भूतबलि आचार्य के पास भेज दिया। भूतबलि आचार्य ने जिनपालित के पास वीसदि सूत्रों को देखकर और पुष्पदन्त आचार्य अल्पायु हैं ऐसा जिनपालित से जानकर महाकर्मप्रकृतिप्राभृत का विच्छेद होने के भय से द्रव्यप्रमाणानुगम से लेकर शेष ग्रन्थ की रचना की।

यह आचार्य धरसेन प्रभृति तीन प्रमुख आचार्यों का संक्षिप्त परिचय है। इस समय जैन परम्परा में पुस्तकारूढ़ जो भी श्रुत उपलब्ध है उसमें षट्खण्डागम और कषायप्राभृत की रचना प्रथम है। षट्खंडागम के मूल स्रोत के व्याख्याता हैं आचार्य धरसेन तथा रचयिता हैं आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि।

आचार्य गुणधर-यतिवृषभ

जैन-परम्परा में षट्खण्डागम का जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान है वही स्थान कषायप्राभृत का भी है। इन आगमग्रन्थों का मूल स्रोत क्या है यह तो श्रुत-परिचय के समय बतलायेंगे। यहाँ तो मात्र कषायप्राभृत के रचयिता आचार्य गुणधर और उस पर वृत्तिसूत्रों की रचना करने वाले आचार्य यतिवृषभ के बारे में विचार करना है। कषायप्राभृत की प्रथम गाथा से सुस्पष्ट विदित होता है कि आचार्य धरसेन के समान आचार्य गुणधर भी अंग-पूर्वों के एक देश के ज्ञाता थे। उन्होंने कषायप्राभृत की रचना पाँचवें पूर्व की दसवीं वस्तु के तीसरे प्राभृत के आधार से की है। इससे विदित होता है कि जिस समय पाँचवें पूर्व की अविछिन्न परम्परा चल रही थी तब आचार्य गुणधर इस पृथ्वी-तल को अपने वास्तव्य से सुशोभित कर रहे थे। ये अपने काल के श्रुतधर आचार्यों में प्रमुख थे।

आचार्य यतिवृषभ उनके बाद आचार्य नागहस्ती के काल में हुए हैं, क्योंकि आचार्य वीरसेन ने इन्हें आचार्य आर्य मंक्षु का शिष्य और आचार्य नागहस्ती का अन्तेवासी लिखा है। ये प्रतिभाशाली महान आचार्य थे, यह इनके कषायप्राभृत पर लिखे गये वृत्तिसूत्रों (चूर्णिसूत्रों) से ही ज्ञात होता है। वर्तमान में उपलब्ध त्रिलोकप्रज्ञप्ति इनकी अविकल रचना है यह कहना तो कठिन है, पर इतना अवश्य है कि इसके सिवा एक त्रिलोकप्रज्ञप्ति और होनी चाहिए। सम्भव है उसकी रचना इन्होंने की हो।

यह तो हम पहले ही लिख आये हैं कि सम्यक् श्रुत के अर्थकर्ता तीर्थंकर केवली होते है और ग्रन्थकर्ता गणधरदेव होते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखकर आनुपूर्वी क्रम से विचार करने पर विदित होता है कि सिद्धान्त-ग्रन्थों और तदनुवर्ती श्रुत के अतिरिक्त अन्य जो भी श्रुत वर्तमानकाल में उपलब्ध होता है उसके रचयिता आचार्यों ने परिपाटी क्रम से प्राप्त हुए श्रुत के आधार से ही उसकी रचना की है। इसलिए यहाँ पर कुछ प्रमुख श्रुतधर आचार्यों का नाम-निर्देश कर देना भी इष्ट है जिन्होंने अन्य अनुयोगों की रचना कर सर्वप्रथम श्रुत के भंडार को भरा है। द्रव्यानुयोग को सर्वप्रथम पुस्तकारूढ़ करने वाले प्रमुख आचार्य कुन्दकुन्द हैं। इनकी और इनके द्वारा रचित श्रुत की महिमा इसी से जानी जा सकती है कि भगवान् महावीर और गौतम गणधर के बाद इनको स्मरण किया जाता है। उत्तरकाल में आचार्य गृद्धपिच्छ, बट्टकेर, शिवकोटि, समन्तभद्र, पूज्यपाद, भट्टाकलंकदेव, विद्यानन्दि और योगीन्द्रदेव प्रभृति सभी आचार्यों ने तथा राजमल, बनारसीदास जी आदि विद्वानों ने इनका अनुसरण किया है। आचार्य अमृतचन्द्र के विषय में तो इतना ही लिखना पर्याप्त है कि मानो आचार्य कुन्दकुन्द के पादमूल में बैठकर ही 'समयसार' आदि श्रुत की टीकायें लिखी हैं।

चरणानुयोग को पुस्तकारूढ़ करने वाले प्रथम आचार्य बट्टकेरस्वामी हैं। इनके द्वारा निबद्ध 'मूलाचार' इतना सांगोपांग है कि आचार्य वीरसेन इसका आचारांग नाम द्वारा उल्लेख करते हैं। उत्तरकाल में जिन आचार्यों और विद्वानों ने मुनि-आचार पर जो भी श्रुत निबद्ध किया है उसका मूल स्रोत मूलाचार ही है। आचार्य वसुनन्दि ने इस पर एक टीका लिखी है। भट्टारक सकलकीर्ति ने भी मूलाचारप्रदीप नामक एक ग्रन्थ की रचना की है। उसका मूल स्रोत भी मूलाचार ही है। इसी प्रकार चार आराधनाओं को लक्ष्य कर आचार्य शिवकोटि ने आराधनासार नामक श्रुत की रचना की है। श्रुत के क्षेत्र में मूल श्रुत के समान इसकी भी प्रतिष्ठा है।

श्रावकाचार का प्रतिपादन करने वाला प्रथम श्रुतग्रन्थ रत्नकरण्डश्रावकाचार है। यह आचार्य समन्तभद्र की कृति है, जिसका मूल आधार उपासकाध्ययनांग है। इसके बाद अनेक अन्य आचार्यों और विद्वानों ने गृहस्थधर्म पर अनेक ग्रन्थों की रचनायें की हैं।

प्रथमानुयोग में महापुराण, पद्मपुराण और हरिवंशपुराण प्रसिद्ध हैं। इनकी रचना भी यथासम्भव परिपाटी क्रम से आये हुए अंग-पूर्वश्रुत के आधार से की गई है। जिन आचार्यों ने इस श्रुत को सम्यक् प्रकार से अवधारण कर निबद्ध किया है उनमें आचार्य जिनसेन (महापुराण के कर्ता), आचार्य रविषेण (पद्मपुराण के कर्ता) और आचार्य जिनसेन (हरिवंशपुराण के कर्ता) मुख्य हैं।

इस तरह चारों अनुयोगों में विभक्त समग्र मूल श्रुत की रचना आनुपूर्वी से प्राप्त अंगपूर्वश्रुत के आधार से ही इन श्रुतधर आचार्यों ने की है, ऐसा यहाँ समझना चाहिए। जैन परम्परा में पूर्व-पूर्व श्रुत की अपेक्षा ही उत्तर-उत्तर श्रुत को प्रमाण माना गया है। अतः सर्वत्र इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही श्रुत की प्रामाणिकता स्वीकार करनी चाहिए।

सम्यक्श्रुत-परिचय

इस समय इस भरतक्षेत्र में केवली, श्रुतकेवली और अभिन्न दशपूर्वियों का तो सर्वथा अभाव है ही, उत्तरकाल में विशिष्ट श्रुतधर जो ज्ञानी आचार्य हो गये हैं उनका भी अभाव है। फिर भी उन आचार्यों द्वारा लिपिबद्ध किया गया जो भी आगम साहित्य हमें विरासत में मिला है उसका पूरी तरह से मूल्यांकन करना हम अल्पज्ञों की शक्ति के बाहर है।

पूर्व काल में अरिहन्त परमेष्ठी की वाणी के रूप में जिस श्रुत का गणधरदेव ने संकलन किया था वह अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट के भेद से दो भागों में विभक्त किया गया था। अंगबाह्य ही, साथ ही आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि भी कम श्रेयोभागी नहीं, जिनकी विलक्षण प्रतिभा और प्रयास के फलस्वरूप अंग-पूर्वश्रुत का यह अवशिष्ट भाग पुस्तकारूढ़ हुआ। भावविभोर होकर मनःपूर्वक हमारा उन भावप्रवण परम सन्त आचार्यों को नो-आगमभाव नमस्कार है। सम्यक् श्रुत के प्रकाशक वे तो धन्य हैं ही, उनकी षट्खण्डागमस्वरूप यह अनुपम कृति भी धन्य है।

अनुपलब्ध चार टीकाएँ

षट्खण्डागम का समस्त जैन वाङ्मय में जो महत्त्वपूर्ण स्थान है और उनमें जीवसिद्धान्त तथा कर्मसिद्धान्त का जैसा विस्तार से सांगोपांग विवेचन किया गयाहै उसे देखते हुए इतने महान् ग्रन्थ पर सबसे पूर्व आचार्य वीरसेन ने ही टीका लिखी होगी, यह बुद्धिग्राह्य प्रतीत नहीं होता। इन्द्रनन्दि के श्रुतावतार पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि सर्व प्रथम षट्खण्डागम और कषायप्राभृत इन दोनों सिद्धान्तों का ज्ञान गुरुपरिपाटी से कुण्डकुन्दपुर में पद्मनन्दि मुनि को प्राप्त हुआ और उन्होंने सबसे पहले षट्खण्डागम के प्रथम तीन खण्डों पर बारह हजार श्लोकप्रमाण परिकर्म नाम की एक टीका लिखी। यह तो स्पष्ट है कि इन्द्रनन्दि ने प्रकृत में जिन पद्मनन्दि मुनि का उल्लेख किया है वे प्रातःस्मरणीय कुन्दकुन्द आचार्य ही होने चाहिए।

इन्द्रनन्दि ने दूसरी जिस टीका का उल्लेख किया है वह शामकुण्ड आचार्यकृत थी। वह छठे खण्ड को छोड़कर शेष पाँच खण्डों और कषायप्राभृत इस प्रकार दोनों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धान्त ग्रन्थों पर लिखी गयी थी। इसका नाम पद्धति था। भाषा प्राकृत, संस्कृत तथा कानड़ी थी। प्रमाण बारह हजार श्लोक था।

इन्द्रनन्दि ने तीसरी जिस टीका का उल्लेख किया है वह तुम्बुलूर ग्रामनिवासी तुम्बुलूर आचार्य कृत थी। यह महाबन्ध नामक छठे खण्ड को छोड़कर दोनों सिद्धान्त ग्रन्थों की टीका के रूप में लिखी गयी थी। नाम चूड़ामणि और प्रमाण चौरासी हजार श्लोक था। भाषा कानड़ी थी।

इन्द्रनन्दि ने चौथी जिस टीका का उल्लेख किया है वह तार्किकार्क समन्तभद्र द्वारा अत्यन्त सुन्दर मृदुल संस्कृत भाषा में महाबन्ध को छोड़ कर शेष पाँच खण्डों पर लिखी गयी थी। उसका प्रमाण 48 हजार श्लोक था।

ये चार टीकाएँ हैं जिनका उल्लेख इन्द्रनन्दि ने अपने श्रुतावतार में किया है। किन्तु धवला टीका लिखते समय वीरसेन स्वामी के समक्ष आचार्य कुन्दकुन्द रचित परिकर्म को छोड़कर अन्य तीन टीकाएँ उपस्थित थीं, यह धवला टीका से ज्ञान नहीं होता। उत्तर काल में इनका क्या हुआ यह कहना बड़ा कठिन है। परिकर्म भी वही है जिसका इन्द्रनन्दि ने परिकर्म टीका के रूप में उल्लेख किया है यह कहना भी कठिन है।

धवला टीका

वर्तमान समय में हमारे समक्ष षट्खण्डागम के प्रारम्भ के पाँच खण्डों पर लिखी गयी एकमात्र धवला टीका ही उपलब्ध है। इसकी रचना सिद्धान्तशास्त्र, छन्दशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, व्याकरणशास्त्र और प्रमाणशास्त्र के पारगामी तथा भट्टारक पद से समलंकृत वीरसेन आचार्य ने की है। यह प्राकृत-संस्कृत भाषा में लिखी गयी है। यह तो धवला टीका से ज्ञात होता है कि षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड जीवस्थान पर यह टीका 18 हजार श्लोकप्रमाण है और चौथे वेदनाखण्ड पर 16 हजार श्लोकप्रमाण है। किन्तु इसका पूरा प्रमाण 72 हजार श्लोक बतलाया है। इससे विदित होता है कि दूसरे, तीसरे और पाँचवें खण्ड को मिलाकर तीन खण्डों तथा निबन्धन आदि 18 अनुयोगद्वारों पर सब मिला कर इसका परिमाण 38 हजार श्लोक हैं। यहाँ यह निर्देश कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि निबन्धन आदि 18 अनुयोगद्वारों पर आचार्य पुष्पदन्त-भूतबलि-कृत सूत्ररचना नहीं है। इसलिए वर्गणाखण्ड के अन्तिम सूत्र को देशामर्षक मानकर इन अठारह अनुयोगद्वारों का विवेचन आचार्य वीरसेन ने स्वतन्त्ररूप से किया है।

इसका 'धवला' यह नाम स्वयं आचार्य वीरसेन ने निर्दिष्ट किया नहीं जान पड़ता। यह टीका वद्दिग उपनामधारी अमोघवर्ष (प्रथम) के राज्य के प्रारम्भकाल में समाप्त हुई थी और अमोघवर्ष की एक उपाधि 'अतिशय धवल' भी मिलती है। सम्भव है इसी को ध्यान में रखकर इसका नाम धवला रखा गया हो। यह धवल पक्ष में पूर्ण हुई थी, इस नामकरण का यह भी एक कारण हो सकता है।

प्राचीनकथा

ऋद्धि और सिद्धि

● *आचार्य श्री अभिनन्दनसागर*

भारत देश महापुरुषों का देश रहा है। यहाँ आर्यजनों के निवास से इस क्षेत्र को आर्यक्षेत्र भी कहते हैं। इस भू-तिलक पर आर्यसंयमियों ने परीषह एवं उपसर्गों को विजितकर उत्तम ध्यान साधना की। उनकी दृष्टि में कंचन और कांच, वन और शहर, झोपड़ी और महल सभी समान थे। भर्तृहरि और शुभचन्द्र दो भाई थे। संसार से विरक्त हो, जंगल की ओर चल दिये। कारणवश दोनों का मार्ग में विछोह हो गया। एक भाई तापस साधुओं के मठ में पहुँचा और तापसी बन गया। दूसरा भाई शुभचन्द्र दिगम्बराचार्य के चरणों में पहुँच, दिगम्बर साधु बन गया। छोटे भाई ने बारह वर्षों तक अनेकानेक रसायन बनाने की कला, स्वर्ण बनाने की कला आदि सीखी और बड़े ही आनन्द से रहने लगा।

एक दिन बड़े भाई की स्मृति आयी। सभी सेवकों को भाई की खोज में भेजा। सेवकों ने देखा एक विशाल चट्टान पर एक योगी ध्यानस्थ विराजमान हैं। पहचान लिया, यही हैं शुभचन्द्र! लेकिन तन पर कपड़ा नहीं, रहने को मकान नहीं, कैसी दीनावस्था इनकी है! सभी सेवकों ने प्रार्थना की, "आपके भाई बहुत दुखी हैं। आप इतने दरिद्री क्यों बने हुए हैं? चलो, आपके भाई ने बुलाया है अन्यथा यह स्वर्ण बनाने का रसायन है इसे लेकर आप अपनी दरिद्रता दूर करें।"

योगीराज मुस्कराये। सारा रसायन भूमि पर गिरा दिया। सेवकों को बड़ा दुख हुआ। सारी घटना स्वामी भर्तृहरि को कह सुनायी। उन्होंने दो शीशा रसायन लिया और भाई के समीप पहुँचे। "भैया! यह क्या किया? देखो, मैंने बारह वर्ष में कितनी साधना की है, मैंने, सोना बनाने की कला सीख ली है। यह रसायन लीजिए और दरिद्रता को दूर कीजिए।"

वीर धीर महात्मा ने उत्तर दिया- "यदि तुम्हें सोना ही इकट्ठा करना था तो घर क्यों छोड़ा, वहाँ क्या कमी थी?" और रसायन की शीशियाँ उसी समय जमीन पर फेंक दीं। भर्तृहरि नाराज हुए- "आपने मेरी बारह वर्ष की मेहनत मिट्टी में मिला दी। आपने क्या किया है? केवल दरिद्री बन गये हैं। खाने पीने का भी ठिकाना नहीं है। बताओ, कोई सिद्धि की हो तो?"

मुनि शुभचन्द्र जी ने उसी समय अपने पैरों की धूलि उठायी और चट्टान पर फेंक दी। सारी चट्टान स्वर्णमय हो गयी। भर्तृहरि आश्चर्यचकित हुए। धन्य है भाई आपकी साधना। मुनिराज ने कहा -'ले लो कितना सोना चाहिए?'

'मुझे सोना नहीं चाहिए। मुझे तो अपने समान ही बना लीजिए।' भर्तृहरि दिगम्बर साधु बन गये। आचार्य कहते हैं- जो आर्य पुरुष निश्छल साधना में तत्पर पर हो पंचेन्द्रिय विजय कर, विषय कषायरूपी घोड़े पर सवार हो, लगाम को पकड़, मन-वचन-कार्य को नियंत्रित करते हैं, उन्हें नाना प्रकार की ऋद्धियाँ स्वतः ही मिलती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कषायों की प्रशमता और परिणामों की समता का नाम 'सल्लेखना'

● मुनिश्री अजितसागर

आचार्यश्री ज्ञानसागर जी के 29वें समाधि दिवस 23 मई 2001 के संदर्भ में आचार्यश्री विद्यासागर जी के सुशिष्य मुनिश्री अजितसागर जी का विशेष आलेख

एक ऐसा नाम जिसके नाम के शब्दों में प्रकाश की विराटता समाई हुई है, तो उसके जीवन में अज्ञानरूपी अंधकार का समावेश कैसे हो सकता है? जिसके अंदर संयम, शील का पावन सागर लहराया हो, ऐसा ज्ञान का आराधक, हरक्षण जिसके जीवन का लक्ष्य ज्ञानोदधि का मंथन चिन्तन करना था, ऐसा पावन नाम ज्ञानसागर था। जिसके अंदर मान नहीं, सम्मान की चाह नहीं, यदि कुछ चाह थी जीवन के प्रत्येक क्षण पर, आत्मकल्याण की भावना एवं जिनवाणी की उपासना करने की थी। जिनकी प्रत्येक चर्या से ज्ञान की शिक्षा मिला करती, ऐसे महानात्मा से हजारों जीवों के कल्याण का स्रोत मिला, जिनकी गंभीरमुद्रा, शांत छबि, वैराग्यमूर्ति, वीतरागता के महामहिम आचार्य श्री ज्ञान सागर जी महाराज का समाधि दिवस। कालजयी व्यक्तित्व के धनी का परिचय इन पंक्तियों के साथ देना चाहता हूँ-

कुछ लोग हैं की वक्त के साँचे में ढल गये।
कुछ लोग थे कि वक्त के साँचे बदल गये।

आचार्यश्री ज्ञानसागर जी का व्यक्तित्व वक्त के साँचे में रहते हुए, वक्त का साँचा बदलने वाला था। संसार में मृत्यु ऐसी वस्तु है जो किसी को क्षमा नहीं करती। लोकव्यवहार में कहा जाता है, 'मृत्यु और ग्राहक का कोई भरोसा नहीं रहता है, कब आ जाये,' इसलिये सभी व्यक्ति मृत्यु से डरते हैं, लेकिन इस महानात्मा को मृत्यु से भय नहीं था, निर्भय होकर मृत्यु को आमंत्रण दिया, उसे बुलाया और प्रेम से गले लगाया था। ज्येष्ठ मास की भीषण तपन, वह भी राजस्थान की उस मरुभूमि की तपन जहाँ पर उस समय तीन साल से अकाल का वातावरण बना था, जहाँ पर प्रत्येक 5-10 मिनिट पर व्यक्ति पानी-पानी चिल्लाता हो, ऐसी भीषण तपन में 3 दिन तक चारों प्रकार के आहार का त्याग कर, आत्म ध्यान में लीन और आत्मचिन्तन का नीर ही जिनके अंदर शीतलता उत्पन्न कर रहा था। और ऐसे समय में आपसे दीक्षित प्रथम शिष्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज अपने गुरु को सजग बनाये रखे हुए थे। आचार्य श्री ज्ञानसागर जी ने उस समय अपने समतारूपी निलय में बास करते हुए देह और आत्मा के चिन्तन में लीन रहते हुए, उस ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या वि.सं. 2030 शुक्रवार 1 जून 1973 को प्रातः काल 10 बजकर 50 मिनिट पर नसीराबाद (राजस्थान) में अपनी देह का त्याग समाधिमरणपूर्वक किया था।

जैन मुनि का जीवन अनोखा होता है। वह अपने शरीर को एक पड़ौसी की तरह मानता है और उसकी रक्षा-सुरक्षा करता है। जब तक यह शरीर चर्या में सहयोग देता है, तब तक वह आवश्यकता के अनुसार उसे खिलाता-पिलाता है। जब कमजोर होने लगता है, तो इसे छोड़ने का निश्चय करता है, और धीरे-धीरे काय को कृश करता हुआ सल्लेखना की साधना करता है। जैन दर्शन में सल्लेखना की साधना संयमी साधक के जीवन का अंतिम लक्ष्य होता है जिसे पाने के लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया आदि कषायों का त्याग कर समता की साधना वीतरागता की उपासना के साथ करता है। किसी की धारणा हो सकती है कि सल्लेखना की साधना आत्मघात है। यह सल्लेखनामरण आत्मघात नहीं, यह तो आत्मसात् करने की बात है। आत्मघात तो निराशावादी लोग ही किया करते हैं, लेकिन सल्लेखना की साधना तो उत्साहपूर्वक होती है। सल्लेखना के साधक जैन मुनि व श्रावक के लिए कहा है- सर्व प्रथम तो कषायों को कृश करना बाद में काय को कृश करने का नाम सल्लेखना है। कषायों की प्रशमता और परिणामों में समता के साथ ही सल्लेखना की साधना होती है। संकल्प-विकल्प एवं संवलेश परिणामों का त्याग करने के बाद अपनी देह को कृश करने की बात होती है। सल्लेखना जाग्रत होकर ही की जाती है अतः यह आत्मघात नहीं है।

संक्षिप्त परिचय

अपने मन में डूबकर पाले सुरागे जिन्दगी।
तु अगर मेरा नहीं बनता न बन, अपना तो बन॥

दुनिया को अपना न बनाकर, अपने आपको समझकर अपने बने आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज का बाल्यकाल उदासीन वृत्तिमय था। पिता श्री चतुर्भुज जी एवं माता श्री घृतवरी देवी ने बालक का नाम भूरामल रखा, दूसरा नाम शांति कुमार भी था। जैन दर्शन एवं अन्य दर्शनों के अध्ययन के प्रति विशेष लगन आपके अंदर थी। परिवार की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि आपको बनारस भेज कर अध्ययन करा सके। लेकिन आप बनारस गये और गमछा आदि बेचकर जीविकोपार्जन करते हुए जैन दर्शन, न्याय एवं भारतीय दर्शनों का अध्ययन उच्च कोटी के विद्वानों से बनारस में किया। संस्कृत व्याकरण का विशेष अध्ययन कर, जयोदय, वीरोदय, भाग्योदय आदि जैसी महान कृतियाँ संस्कृत साहित्य को दीं। आपने बालब्रह्मचारी रहकर संयम को धारण करके मोक्षमार्ग पर चलना प्रारंभ किया। आपने आचार्य श्री वीरसागर जी से सन् 1955 में क्षुल्लक दीक्षा ली, और आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से आषाढ़ कृष्णा द्वितीय वि.सं. 2016 में मुनि दीक्षा ली। ऐसे ज्ञानसागर जी महाराज ने जैन समाज के लिये 24-25 जैन साहित्यकृतियाँ दीं और आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज जैसी अनुपम चेतनकृति प्रदान की। ऐसे महान साधक का पुण्यतिथि-महोत्सव हम सबके लिये देह से विदेही बनने की याद दिलानेवाला एवं आत्मसाधना के साथ आत्मकल्याणरूपी समाधिमरण का रहस्य बताने वाला है। ऐसे अप्रतिम योगी के चरणों में नमन करता हूँ इन पंक्तियों से.....

तरणि ज्ञानसागर गुरी तारो मुझे ऋषीश।
करुणा कर करुणा करो, कर से दो आशीष॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन आचार में इन्द्रियदमन का मनोविज्ञान

● प्रो. रतनचन्द्र जैन

जैन आचार शास्त्र में इच्छाओं से मुक्ति के दो उपाय बतलाये गये हैं : विषयों से वैराग्य और इंद्रियदमन। इन्द्रियदमन का अर्थ है इन्द्रियों को बलपूर्वक विषयभोग से दूर रखना। इसे इन्द्रियनिग्रह और इन्द्रियसंयम भी कहते हैं। किन्तु आधुनिक युग के प्रसिद्ध मनोविश्लेषक फ्रायड ने दमन की कटु आलोचना की है। उसने इसे समस्त मानसिक और शारीरिक विकृतियों का कारण बतलाया है और उन्मुक्त भोग की सलाह दी है। किन्तु उसकी दवा रोग से भी भयंकर है। इच्छानिवृत्ति में इन्द्रियदमन की भी मनोवैज्ञानिक भूमिका है। उसका उद्घाटन करता है यह आलेख।

जैन सिद्धान्त में वीतरागता को मोक्ष का एकमात्र साधन माना गया है। वीतरागता का लक्षण है समस्त शुभाशुभ इच्छाओं की निवृत्ति। अतः मुक्ति की सारी साधना इच्छाओं के विसर्जन की साधना है। निराकुलतारूप सच्चे सुख की प्राप्ति भी इच्छाओं के अभाव से होती है। इच्छाएँ जितनी कम होंगी, निराकुलता का अनुभव उतना ही अधिक होगा। जब इच्छाएँ पूर्णतः समाप्त हो जाती हैं तब पूर्ण निराकुलता का आविर्भाव होता है।

जैन आचार शास्त्र में इच्छाओं से मुक्ति के दो उपाय बतलाये गये हैं : विषयों से वैराग्य और इन्द्रियदमन। इन्द्रिय दमन का अर्थ है इन्द्रियों को बलपूर्वक विषयभोग से दूर रखना। इसे इन्द्रियनिग्रह और इन्द्रियसंयम भी कहते हैं। मनीषियों ने कहा है-

जो पुण विसयविरत्तो अप्पणां सव्वदो वि संवरइ।
मणहरविसएहिंतो तस्स फुडं संवरो होदि॥

कार्तिकेयानुप्रेक्षा-101

'शम दम तैं जो कर्म न आवैं सो संवर आदरिये।'
छहढाला 3/9 (शम=राग का अभाव, दम=इन्द्रियदमन)

दमन की आलोचना

किन्तु आधुनिक युग के प्रसिद्ध मनोविश्लेषक फ्रायड ने दमन की कटु आलोचना की है। उसने इसे सभ्य समाज का सबसे बड़ा अभिशाप बतलाया है और कहा है कि सभ्य संसार की जितनी भी मानसिक और शारीरिक बीमारियाँ है, जितनी हत्याएँ और आत्महत्याएँ होती हैं, जितने लोग पागल होते हैं, जितने पाखण्डी बनते हैं उनमें अधिकांश का कारण इच्छाओं का दमन है। इच्छाओं के दमन से व्यक्तित्व अंतर्द्वन्द्व से ग्रस्त हो जाता है। प्राकृतिक मन और नैतिक मन में संघर्ष छिड़ जाता है। प्राकृतिक मन भोग की इच्छा उत्पन्न करता है, नैतिक मन उसे दबाने का प्रयत्न करता है। इस संघर्ष में इच्छाएँ दब जाती हैं, पर नष्ट नहीं होतीं। वे गूढ़ (अचेतन) मन की गहराइयों में चली जाती हैं और ग्रन्थि बनकर बैठ जाती हैं। ये ग्रन्थियाँ चरित्र में विकृति उत्पन्न करती हैं, मनुष्य को रुग्ण, विक्षिप्त, छद्मी या भ्रष्ट बना देती हैं। इच्छाओं के दमन का परिणाम हर हालत में विनाशकारी है। इसलिए फ्रायड ने दमन का पूरी तरह निषेध किया है और उन्मुक्त कामभोग की सलाह दी है। यद्यपि उसके द्वारा सुझाई गई यह दवा रोग से भी भयंकर है।

गीता में भी कहा गया है कि जो मूढ़ात्मा इन्द्रियों को बलपूर्वक विषयभोग से वंचित रखता है वह मन ही मन विषयों का स्मरण करता रहता है। इस प्रकार वह मायाचारी बन जाता है-

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥

गीता 3/6

जैनाचार्य वट्टकेर ने भी मूलाचार में बतलाया है कि जिसका विषयों से राग समाप्त हो गया है वही वास्तव में संयमी है। जो बलपूर्वक इंद्रियों को विषयों से दूर रखता है वह संयमी नहीं है, क्योंकि उसका मनरूपी हाथी विषयों में रमण करता रहता है। इसलिए उसे सुगति प्राप्त नहीं होती-

भावविरदो दु विरदो ण दव्वविरदस्य सुगई होइ।
विसयवणरमणसीलो धरियव्वो तेण मणहत्थी॥

मूलाचार, 995

पं. टोडरमल जी ने भी क्षमता के अभाव में जो बलपूर्वक उपवासादि किया जाता है उसके पाँच दुष्परिणाम बतलायें है- (1) क्षुधादि की पीड़ा असह्य होने पर आर्तध्यान उत्पन्न होता हैं, (2) मनुष्य प्रकारान्तर से इच्छा तृप्ति की चेष्टा करता है, जैसे प्यास लगने पर पानी तो न पिये किन्तु शरीर पर जल की बूँदे छिड़के, (3) पीड़ा को भुलाने के लिए जुआ आदि व्यसनों में चित्त लगाता है, (4) प्रतिज्ञा से च्युत हो जाता है, (5) उपवासादि की प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर भोजनादि में अति आसक्ति पूर्वक प्रवृत्त होता है। (मोक्षमार्ग प्रकाशक 7/238-240)

यहाँ प्रश्न उठता है कि यदि इन्द्रियदमन इतना हानिकारक है तो जैन आचारसंहिता में उसे आवश्यक क्यों बतलाया गया है? और जब विषयों से वैराग्य होने पर इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं तब इन्द्रिय दमन का औचित्य क्या है? अथवा यदि इच्छाओं का विसर्जन केवल विषयविराग से संभव नहीं है, इसके लिए इन्द्रियदमन भी आवश्यक है तो इच्छाओं के विसर्जन में उसकी मनोवैज्ञानिक भूमिका क्या है? इसी की गवेषणा इस आलेख में की गयी है।

इन्द्रियदमन की मनोवैज्ञानिकता

सामान्य धारणा यह है कि इन्द्रियों की विषयप्रवृत्ति सर्वथा मनोगत विषयवासना पर आश्रित है। मन की विषयासक्ति के कारण ही इच्छाएँ पैदा होती हैं और इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में प्रवृत्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होती हैं। इसलिए मन के विषय-विरक्त हो जाने पर इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं। अतः इन्द्रियों पर अलग से निग्रह आवश्यक नहीं है।

इच्छाओं के दो स्रोत

पर यह धारणा तथ्य के विपरीत है। यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो पायेंगे कि इच्छाओं से मुक्ति के लिए विषयों से विरक्ति ही प्रर्याप्त नहीं है। क्योंकि इच्छाएँ केवल विषयासक्ति से ही उत्पन्न नहीं होतीं, इन्द्रियों के व्यसन या भोगाभ्यास से भी उत्पन्न होती हैं। यह एक शुद्ध शारीरिक या स्नायुतन्त्रीय प्रक्रिया है। मूलरूप से इच्छाएँ विषयराग से ही उत्पन्न होती हैं, किन्तु तृप्ति के लिए जब इन्द्रियाँ विषयभोग करती हैं तब नाड़ीतन्त्र में भोग का एक संस्कार पड़ता है। यह संस्कार जब बार-बार आवृत्त होता है तब वह एक व्यसन या लत में परिणत हो जाता है। तब इन्द्रियों में सम्बन्धित विषय के भोग की इच्छा अपने आप उत्पन्न होने लगती है। जिस समय, जिस वस्तु के भोग का अभ्यास इन्द्रियों को हो गया है उस समय उस वस्तु की प्राप्ति के लिए ऐन्द्रियक नाड़ी तन्त्र में उद्दीपन होता है। इससे शरीर और मन में व्याकुलता की अनुभूति होती है जिससे मुक्त होने के लिए उस वस्तु का भोग आवश्यक हो जाता है। इस उद्दीपन को 'तलब' कहते हैं। उदाहरण के लिए जिन्हें बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, चाय, शराब आदि की लत पड़ जाती है उनके एन्द्रियक तन्तुओं में निर्धारित समय पर इन द्रव्यों के भोग की उत्तेजना पैदा होती है और तब उन्हें बरबस इनका सेवन करना पड़ता है। इसी प्रकार जिन्हें अधिक भोजन करने की या अधिक कामसेवन की आदत पड़ जाती है उनकी इन्द्रियाँ उतने ही भोजन और उतने ही कामसेवन की माँग करने लगती हैं। इसे मनोवैज्ञानिक भाषा में प्रतिबद्धीकरण (Conditioning) कहते हैं।

इन्द्रियों का एक अलग विधान

भोगाभ्यास हो जाने पर इन्द्रियों का अपना एक अलग विधान बन जाता है। पहले वे मन के अनुसार चलती हैं, बाद में मन को अपने अनुसार चलाने लगती हैं, और उनकी चालक शक्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि न चाहते हुए भी वे मन को बलपूर्वक अपनी ओर खींच लेती हैं। यह तथ्य तो सर्वविदित है कि मन ही हमारे समस्त कार्यों का स्रोत हैं, मन ही इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों में प्रवृत्त करता है, पर इस तथ्य पर शायद सबका ध्यान न गया हो कि इन्द्रियाँ भी मन को बलात् अपने विषयों की ओर आकृष्ट कर लेती हैं। गीता में यह तथ्य स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया गया है-

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥ 2/60

- हे अर्जुन! समझदार मनुष्य भी इन इन्द्रियों को वश में करने का बार-बार प्रयत्न करे तो भी ये प्रचण्ड इन्द्रियाँ मन को जबर्दस्ती विषयों की ओर खींच ले जाती हैं।

पंडित आशाधर जी ने भी अनगारधर्मामृत में इस मनोवैज्ञानिक सत्य को अनावृत किया है -

इष्टमिष्टोत्कटरसैराहारैरुद्भटीकृताः।
यथेष्टमिन्द्रियभटा भ्रमयन्ति बहिर्मनः॥

अर्थात् यदि इन्द्रियों को इष्ट, मिष्ट और स्वादिष्ट भोजन से अत्यन्त शक्तिशाली बना दिया जाता है तो वे मन को बाह्य पदार्थों में भ्रमण कराती हैं।

यही कारण है कि कई बार लोग बीड़ी, सिगरेट, शराब आदि की हानियों से सचेत होकर जब उन्हें छोड़ने का प्रयत्न करते हैं तो बार-बार कोशिश करने पर भी नहीं छोड़ पाते। इसीलिए जहाँ यह सत्य है कि इन्द्रियों के विषय-निवृत्त हो जाने पर भी मन का विषय-विरक्त होना अनिवार्य नहीं है, वहाँ यह भी सत्य है कि मन के विषय-विरक्त हो जाने पर भी इन्द्रियों का विषय-निवृत्त होना निश्चित नहीं है। यद्यपि यह सुनने में कुछ विचित्र लगेगा, क्योंकि हमारे मन में यही धारणा है कि मन ही इन्द्रियों की विषय-प्रवृत्ति का एकमात्र हेतु है और उसके विरक्त हो जाने पर इन्द्रियों का भी विषयनिवृत्त हो जाना अनिवार्य है। पर अनुभव ऐसा नहीं कहता। मन के विषय-विरक्त हो जाने पर भी इन्द्रियों के अभ्यास-वश विषयेच्छा उत्पन्न होती रह सकती है, जैसे कि चाय आदि की आदत पड़ जाने पर उनसे विरक्ति होने के बावजूद उनके भोग की इच्छा उत्पन्न होती रहती है। इस तथ्य को देखते हुए गीता का यह कथन बिलकुल सत्य प्रतीत होता है कि 'काम' (इच्छा) का निवास मन, बुद्धि और इन्द्रिय तीनों में रहता है-

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनाम्॥ गीता 3/40

व्यसननिवृत्ति अभ्यास से

इस प्रकार इच्छाओं के दो स्रोत हैं विषयराग तथा इन्द्रियव्यसन। विषयराग तो ज्ञान से नष्ट हो जाता है, इन्द्रिय-व्यसन की निवृत्ति कैसे हो? इन्द्रियाँ तो जड़ हैं। उनकी व्यवस्था पूर्णतः भौतिक या स्नायविक है। उनकी अभ्यासजन्य स्नायविक व्यवस्था को ज्ञान से कैसे बदला जा सकता है? नाड़ीतन्त्र आध्यात्मिक सत्य और दार्शनिक तर्कों को कैसे समझे? तर्कों को चेतन तत्त्व ही समझ सकता है। जो विकार अज्ञानजन्य हो उसे ही ज्ञान से नष्ट किया जा सकता है, किन्तु जो विकार अभ्यासजन्य हो उसे ज्ञान से समाप्त करना कैसे सम्भव है? यदि मन की कोई धारणा गलत हो तो उसे केवल समझ से बदला जा सकता है, लेकिन यदि तन की कोई आदत गलत हो तो उसे केवल समझ से कैसे बदला जा सकता है? जिन्हें बीड़ी, सिगरेट, शराब आदि की लत पड़ गयी है उनके नाड़ीतन्त्र में उत्पन्न होने वाली तलब (उत्तेजना) क्या इन पदार्थों को हानिकारक समझ लेने मात्र से मिट सकती है? नहीं, समझ उत्पन्न होने के बाद जब इस 'तलब' के अवदमन (उपेक्षा) का अभ्यास किया जायेगा तभी मिट सकती है। अर्थात् जब-जब इन मादक द्रव्यों की इच्छा उत्पन्न हो तब-तब उस इच्छा को पूर्ण न करने का प्रयास किया जाए तभी नाड़ीतन्त्र में विकसित 'तलब' के संस्कार धीरे-धीरे शिथिल होकर नष्ट हो सकते हैं। इसके लिए कोई प्रतिपक्षी उपाय भी अपनाया जा सकता है, जैसे बीड़ी, तम्बाकू, आदि की तलब उत्पन्न होने पर किसी अहानिकर वस्तु का सेवन किया जाय या चित्त को किसी रुचिकर कार्य में व्यस्त कर दिया जाय। पर व्यसनजन्य इच्छा को किसी भी दशा में सन्तुष्ट न किया जाए। इस कार्य में आरंभ में कष्ट तो बहुत होगा, लेकिन हम पायेंगे कि धीरे-धीरे इन्द्रियों की व्यसनजन्य उत्तेजना तृप्ति की सामग्री न मिलने से क्षीण होती जा रही है और नाड़ीतन्त्र की विकृत व्यवस्था में बदलाव आ रहा है। इस प्रकार वह व्यसन एक दिन पूर्णतः समाप्त हो जायेगा। समस्त इन्द्रियविषयों के अनावश्यक भोग की आदतें इसी प्रकार मिटायी जा सकती हैं और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार इंद्रियों को अनावश्यक विषयभोग के व्यसन से बचाया जा सकता है। इसे ही जैन आचार में दम या इन्द्रियदमन कहा गया है और इसी कारण इन्द्रियदमन की आवश्यकता प्रतिपादित की गयी है।

इन्द्रियदमन अपरिहार्य

फ्रायड के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रचार होने के बाद 'दमन' शब्द खतरनाक मालूम होने लगा है, पर इच्छाओं के विसर्जन में इसकी मनोवैज्ञानिकता सिद्ध है। रागजन्य इच्छाओं को ज्ञानजन्य वैराग्य से विसर्जित किया जा सकता है, किन्तु व्यसनजन्य और गृद्धिजन्य (इन्द्रियलोभजन्य) तथा अन्य दैहिक उत्तेजनाजन्य अनावश्यक इच्छाओं से मुक्ति पाने के लिए इन्द्रिय दमन अपरिहार्य है।

हानिकारक नहीं

इन्द्रियदमन अर्थात् शरीर में उत्पन्न होने वाली अस्वाभाविक एवं अनावश्यक उत्तेजनाओं को नियंत्रित करना हानिकारक नहीं है, बल्कि स्वास्थ्यप्रद एवं शान्तिप्रद है। अस्वाभाविक एवं अनावश्यक इच्छाएँ एक दैहिक विकृति है। विषयभोग द्वारा विकृति का पोषण अस्वाभाविक इच्छाओं की उत्पत्ति द्वारा आर्त्तभाव को जन्म देता है और आर्तभाव (मानसिक पीड़ा) अनेक मनोरोगों और शारीरिक व्याधियों को प्रतिफलित करता है। अतः अस्वाभाविक एवं अनावश्यक उत्तेजनाओं को निष्क्रिय कर देने से आर्त्तभाव की उत्पत्ति का महान कारण निरस्त हो जाता है जिससे स्वास्थ्य और शान्ति की उपलब्धि होती है।

उत्तेजनाओं का नियन्त्रण क्रमशः

हाँ, ऐन्द्रिय उत्तेजनाओं का नियंत्रण क्रमशः किया जाना चाहिए। जितने अंश में रागभाव विगलित होने पर चारित्रिक क्षमता उत्पन्न हुई है उतने ही अंश में ऐन्द्रिय उत्तेजनाओं का दमन करना युक्त है। ऐसा होने पर चारित्रिक विकृति के लिए अवकाश न रहेगा।

उन्मुक्त भोग दमन का विकल्प नहीं

वैराग्यविहीन अथवा क्षमताविहीन इन्द्रियदमन से चारित्रिकविकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। उनसे बचने के लिए फ्रायड ने जो उन्मुक्त भोग का उपाय बतलाया है वह भारतीय आचार संहिता में अंगीकृत नहीं किया गया, क्योंकि यह तो उस औषधि के समान है जो रोगी को एक साधारण रोग से बचाने के लिए उससे भी भयंकर रोग से ग्रस्त कर देती है। इच्छाओं का वैराग्यविहीन दमन जितना हानिकारक है उससे भी कहीं ज्यादा घातक उन्मुक्त भोग है। इसके लोमहर्षक परिणाम हम अमेरिका जैसे स्वच्छन्द भोगी देशों में दिनोंदिन बढ़ती हुई विक्षिप्तता और आत्महत्याओं के रूप में देख सकते हैं।

निष्कर्ष यह है कि ऐन्द्रिय उत्तेजनाओं के शक्त्यनुसार क्रमिक दमन से इच्छाओं का नाड़ीतन्त्रीय या स्नायविक स्रोत निष्क्रिय हो जाता है। अतः इच्छाओं के विसर्जन में इन्द्रियदमन उतना ही मनोवैज्ञानिक साधन है जितना विषयों से वैराग्य।

137, आराधना नगर
भोपाल-462003

गीत

तुम बजाय इसके कि कोई सूर्य जनमते

● *अशोक शर्मा*

1

तुम बजाय इसके कि कोई सूर्य जनमते,
ड्योढ़ी की जलती कन्दीलें बुझा गये।
छत पर चढ़ते देखा हो जिसने सूरज को
वह पूरब की प्रसव-वेदना क्या जाने?
जो कैद उजाले की मुट्ठी में रहता हो
वह अँधियारों के शिविर भेदना क्या जाने?
तुम बजाय इसके कि कोई दुर्ग जीतते,
उठी हुई सारी संगीनें झुका गये।

2

सपनों के लुटने का दुःख तुम क्या जानो
आँख तुम्हारी टूटे सपने कब ढो पाई?
खिलती बगिया पर अपना भी हक जता रहे
स्वेद बहाते किन पाँवों में पड़ी बिवाई?
तुम बजाय इसके कि कोई चित्र बनाते,
कैनवास पर खिंची लकीरें मिटा गये।

3

अमृतघट ही जिन ओठों की प्यास रही हो,
वे शिवकण्ठों का गरल पचाना क्या जानें?
घाट पराये नाव लगा बैठे जो अपनी
वे पतवारों का धरम निभाना क्या जानें?
तुम बजाय इसके कि खतरा मोल उठाते
संघर्षों को तहखानों की राहें दिखा गये।

अभ्युदय निवास, 36/बी, मैत्री बिहार,
सुपेला, भिलाई, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्मरण

छोटे मियाँ सुभान अल्लाह

● पं. मूलचन्द लुहाड़िया

बात तब की है जब सन् 1976 में परम पूजनीय आचार्य विद्यासागर महाराज बुंदेलखण्ड में प्रथम बार प्रवेश कर कटनी पहुँचे थे। कटनी पहुँचने से पूर्व ही आचार्य श्री स्वयं तो अस्वस्थ थे ही किन्तु उनके गृहस्थ अवस्था के सहोदर एवं प्रथम साधु शिष्य क्षुल्लक समयसागर जी भी कटनी आकर तीव्र ज्वर से पीड़ित हो गए। ज्वर निरंतर बना रहने लगा और 105-106 डिगरी को छूने लगा। चातुर्मास स्थापना का समय निकट आ रहा था। आचार्य श्री के मन में नगरीय क्षेत्र को छोड़कर तीर्थक्षेत्र कुंडलपुर में चातुर्मास करने के भाव थे। किन्तु स्वयं की अस्वस्थता एवं क्षुल्लक जी का तीव्र ज्वर कुंडलपुर के लिये प्रस्थान करने में बाधक बन रहे थे। आचार्य श्री परिस्थितियों के द्वंद्व में निर्णय नहीं कर पा रहे थे। अंत में अंतर में बैठे सहज निस्पृही संत की विजय हुई और अध्यात्म के संबल से उत्पन्न साहस के बल पर आचार्यश्री क्षुल्लक समय सागर जी को तीव्र अस्वस्थता की दशा में कटनी में ही छोड़कर कुंडलपुर की ओर बिहार कर गए। भाई का मोह न सही, किन्तु अपने प्रथम युवा शिष्य का राग भी उस महान संत को अपने निश्चय से नहीं डिगा सका।

आचार्यश्री के कुंडलपुर पहुँचने के 1-2 दिन बाद ही मैं और मेरे साथी दीपचंद जी चौधरी वहाँ पहुँच गए थे। आचार्यश्री के प्रस्थान करने के बाद कटनी में क्षुल्लक जी का स्वास्थ्य अधिक खराब होने लगा। एक दिन जब क्षुल्लक के स्वास्थ्य की स्थिति अत्यंत चिंता जनक बनी तो पं. जगन्मोहन लाल जी शास्त्री ने पत्र लेकर एक व्यक्ति को कार से कुंडलपुर भेजा। पत्र में पंडितजी ने आचार्य श्री से निवेदन किया था कि क्षुल्लक जी महाराज अत्यंत अस्वस्थ हैं, समाधि की स्थिति बन गई है अतः वे तुरंत कटनी पधार जावें। पंडित जी ने सलाह दी थी कि ऐसी आपातकालीन परिस्थिति में आप कार का उपयोग कर लेवें। पत्र के इन गंभीर समाचारों ने भी आचार्यश्री को तनिक भी विचलित नहीं किया। उस समय मैं वहाँ ही बैठा था। मैंने भी पत्र पढ़ा, आचार्यश्री मौन, चिंतनलीन बैठे थे। मैं, वातावरण की स्तब्धता को भंग करते हुए बोला- आचार्यश्री! क्षुल्लक जी की समाधि की स्थिति में तो आपको कटनी पधारना ही चाहिए। ऐसे अवसर पर तो नियमों की उपेक्षा करने की भी आगम आज्ञा देता है। आचार्यश्री ने मौन तोड़ा। कहने लगे अब मेरा कटनी जाना संभव नहीं है। यदि कदाचित् क्षुल्लक जी की समाधि का अवसर आ भी जाए तो पंडित जी भली प्रकार समाधि कराने में सक्षम हैं। उन्होंने मुझे कहा कि पंडित जी को लिख दो कि समाधि का अवसर आने पर आप आगमानुसार समाधि करा देवें। मैं जानता था कि आचार्य श्री प्रायः अपना निर्णय नहीं बदलते हैं। अतः उनसे अधिक आग्रह करना सार्थक नहीं है। मैंने आचार्यश्री से कहा यदि आपकी आज्ञा हो तो हम कटनी चले जाएँ। आचार्यश्री ने सहज भाव से उत्तर दिया जैसी तुम्हारी इच्छा।

हम दोनों कार में बैठकर सायंकाल कटनी आ गए। कार कटनी में शिक्षा संस्थान भवन के सामने रुकी, जहाँ क्षुल्लक जी विराज रहे थे। बाहर दालान में पंडित जी, जो सामायिक से उठे ही थे, मिल गए। मैंने पूछा पंडित जी क्षुल्लक जी महाराज कैसे हैं? पंडित जी का दिया हुआ वह उत्तर आज भी मेरे कानों में गूँजता रहता है। पंडित जी बोले 'बड़े मियाँ सो बड़े मियाँ, छोटे मियाँ सुभान अल्लाह'। उन्होंने आगे कहा कल क्षुल्लक जी की स्थिति अत्यंत चिंता जनक हो गई थी। ज्वर ने 107 डिग्री को छू लिया था। कटनी में वर्धा से संत बिनोबा भावे के व्यक्तिगत डाक्टर आए हुए थे। हमने उनको क्षुल्लक जी महाराज को देखने बुलाया। डाक्टर साहब ने क्षुल्लक जी की नाड़ी, हृदय, रक्त चाप आदि का परीक्षण किया और कुछसमय बाद बाहर आकर बोले भाई स्थिति तो बहुत गंभीर है। हमारे मेडिकल विज्ञान के अनुसार तो इनका जीवित रहना कठिन है। इस समय इनको बेहोश हो जाना चाहिए। किन्तु इनके चेहरे पर खिला स्मित हास्य एवं दिव्य तेज इनके जीवित बने रहने की घोषणा कर रहे हैं। डाक्टर साहब ने कहा मैं तो आश्चर्य चकित हूँ, इन महात्मा जी के आगे तो मेडिकल विज्ञान के सिद्धांत फेल होते लग रहे हैं।

पंडित जी ने आगे कहा किन्तु आज प्रातः काल से क्षुल्लक जी के स्वास्थ्य में आश्चर्य जनक परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है। ज्वर भी कम हुआ है और इन्होंने आहार के समय औषधि, दूध आदि भी लिया है। दिन में धीरे-धीरे स्थिति सुधरती सी लग रही है। हम अंदर कमरे में क्षुल्लक जी के दर्शन करने पहुँचे। इच्छामि निवेदन कर बैठे। क्षुल्लक जी के भीतर का अध्यात्म आधारित दृढ़ आत्म विश्वास चेहरे पर खिली स्मित मुस्कान एवं तेज के रूप में बाहर दिखाई दे रहा था। इस अध्यात्म के आगे रोग घुटने टेक देता है। असाता वेदनीय असहाय हो भाग खड़ा होता है। हमें तो क्षुल्लक जी महाराज का अंग-अंग उनके स्वास्थ्य में सुधार के समाचार दे रहा था। हमारे पूछने पर क्षुल्लक जी बोले मैं बिल्कुल ठीक हूँ।

पंडित जी अपने कहे हुए मुहावरे के प्रसंग में बोले कि बड़े महाराज आचार्यश्री की सहन शीलता तो हमने देखी कि वे अपनी अस्वस्थ दशा में भी कटनी से बिहार कर कुंडलपुर पहुँच गए, किन्तु इन छोटे महाराज क्षुल्लक जी की सहनशीलता, धैर्य, समता देखकर तो हम सब आश्चर्य चकित थे। शरीर में 106-107 डिग्री ज्वर और चेहरे पर स्मित हास्य मानों कुछ हुआ ही न हो। ये छोटे महाराज तो मौत के मुँह में पहुँच कर इस तरह मुस्कराते रहे कि मौत भी डर कर भाग गई। इसीलिए मैंने कहा था 'बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ, छोटे मियाँ सुभान अल्लाह।'

मदनगंज-किशनगढ़- 305801
(जिला- अजमेर) राजस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'मूकमाटी' में प्रशासनिक एवं न्यायिक दृष्टि

● सुरेश जैन, आई.ए.एस.

'मूकमाटी' आचार्य श्री विद्यासागर जी का युगान्तरकारी महाकाव्य है। महाकाव्य के साथ-साथ यह एक विश्वकोष भी है। 'महाभारत' के विषय में कहा गया है : 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से सम्बन्धित जो ज्ञान इसमें है वही अन्यत्र है और जो इसमें नहीं है वह कहीं भी नहीं है।' ऐसा ही मूकमाटी के विषय में भी कहा जा सकता है। उसमें काव्यलक्षणभूत रसात्मकता तो है ही, वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से संबंधित विभिन्न ज्ञातव्यों से भी परिपूर्ण है। प्रशासन और न्याय अर्थ और काम के अंग हैं। उन पर भी समीचीन दिशानिर्देश मूकमाटी में उपलब्ध है। प्रस्तुत शोधपूर्ण आलेख में उन्हीं का अनुसंधान किया गया है।

आचार्य विद्यासागर जी द्वारा विरचित महाकाव्य मूकमाटी भारतीय संस्कृति की महत्त्वपूर्ण धरोहर है। पारसधाम नैनागिरि की माटी में मूकमाटी महाकाव्य की पूर्णता की जानकारी पूर्णता के कुछ ही क्षणों बाद प्राप्त कर हमें हार्दिक प्रसन्नता हुई थी। इसके पूर्व वरिष्ठ विद्वानों, साहित्यकारों एवंअपनी पत्नी विमला जैन, जिला एवं सत्र न्यायाधीश, के साथ बैठकर इस लेखक ने नैनागिरि की सिद्धशिला पर विराजमान आचार्य विद्यासागर जी के मधुर कण्ठ से इस महाकाव्य की अनेक पंक्तियाँ सुनने का अनुपम सौभाग्य प्राप्त किया था।

नैनागिरि में जनमी यह मूकमाटी प्रत्येक मानव में शाश्वत जीवनमूल्यों की स्थापना कर संस्कृति के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान करती है। यह प्रत्येक व्यक्ति को संजीवनी शक्ति प्रदान करती हुई अपनी उत्कृष्ट वैचारिक क्रांति के द्वारा युगीन जीवनादर्शों की स्थापना करती है। पिसनहारी की मढ़िया में प्रारंभ हुई तथा पारसनाथ की समवशरण भूमि में पूरी हुई मूकमाटी विश्व के प्रत्येक प्राणी को विकास के समान एवं समुचित अवसर उपलब्ध कराती है और प्रकाश स्तंभ की भाँति उसके उत्कर्ष का पथ प्रशस्त करती है।

मानव धर्म के बिना राजनीति, न्यायपालिका और कार्यपालिका पंगु होती हैं क्योंकि प्रत्येक व्यवस्था मानव को केन्द्र में रखकर ही निर्मित की जाती है। व्यवस्था का यह त्रिकोण समाज का आधारभूत एवं महत्त्वपूर्ण अंग है। आज राजनीतिक, न्याय एवं प्रशासकीय पंगुता अपने शिखर पर है। हमें अपने राजनीतिज्ञों, न्यायविदों एवं प्रशासकों में मानवता के शाश्वत मूल्य स्थापित करना आवश्यक है जिससे ऊँचे पद पर बैठकर उन्हें साधारण से साधारण व्यक्ति के साथ मानवीय व्यवहार करने में हीनता का अनुभव न हो। यदि राजनीतिज्ञ, न्यायविद और प्रशासक आचार्य श्री के संदेश का शतांश भी अपने जीवन में उतार लें तो वे और हम लौकिक एवं आध्यात्मिक सम्पन्नता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच सकते हैं।

मूकमाटी हमें ऐसे सूत्र उपलब्ध कराती है जिनका अवलम्बन कर हम मानवता की ऊँचाइयों का स्पर्श कर सकते हैं और राजनीति, न्यायपालिका और कार्यपालिका के अंग बनकर राष्ट्र में सुख शान्ति का वातावरण निर्मित करने में अहम् भूमिका निभा सकते हैं। नीचे उन सूत्रों का उद्घाटन किया जा रहा है।

प्रशासकों के उत्थान के लिए अहंकार-शून्यता एवं इंद्रिय संयम की सर्वप्रथम आवश्यकता है-

विकास के क्रम तब उठते हैं,
जब मति साथ देती है,
जो मान से विमुख होती है,
और
विनाश के क्रम तब जुटते हैं,
जब रति साथ देती है,
जो मान से प्रमुख होती है।
उत्थान-पतन का यही आमुख है।

प्रशासकों एवं न्यायिक अधिकारियों से रचनाकार ने अपेक्षा की है कि वे सिंहवृत्ति अपनायें। मानवीय हितों के विपरीत सिद्धान्त विमुख होकर कोई समझौता न करें। मायाचार एवं आडंबरों से स्वयं को अलग रखते हुए सदैव विवेकपूर्ण निर्णय लेकर समाज में उच्च कोटि के प्रशासनिक एवं न्यायिक मानदण्ड स्थापित करें। यथा-

पीछे से कभी किसी पर
धावा नहीं बोलता सिंह,
गरज के बिना गरजता भी नहीं,
और/बिना गरजे/किसी पर बरसता भी नहीं
यानी *मायाचार से दूर रहता है सिंह*
सिंह विवेक से काम लेता है,
सही कारण की ओर ही
सदा दृष्टि जाती है सिंह की।

अधिकांश न्यायिक एवं प्रशासनिक अधिकारी अपने शारीरिक सुख, पदोन्नति एवं वेतनवृद्धि के चिंतन में अहर्निश संलग्न रहते हैं। उनके लिये निम्नांकित पंक्तियाँ वास्तविक जीवन लक्ष्य निर्धारित करने की प्रेरणा देती हैं-

भोग पड़े हैं यहीं/भोगी चला गया,
योग पड़े हैं यहीं/योगी चला गया,
कौन किसके लिए/धन जीवन के लिए,
या जीवन धन के लिये?
मूल्य किसका/तन का या वेतन का,
जड़ का या चेतन का?

प्रत्येक अधिकारी को पुरुषार्थ एवं परिश्रम की प्रेरणा देते हुए पुरुषार्थ एवं परिश्रम के जीवंत शीर्ष पुरुष कहते हैं -

बाहुबल मिला है तुम्हें, करो पुरुषार्थ सही,
पुरुष की पहचान करो सही,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिश्रम के बिना तुम,
नवनीत का गोला निगलो भले ही,
कभी पचेगा नहीं वह,
प्रत्युत जीवन को खतरा है।

न्यायिक-प्रशासनिके अधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह सही व्यक्ति पर अनुग्रह करे एवं समाज विरोधी आचरण को नियंत्रित करे-

शिष्टों पर अनुग्रह करना,
सहज प्राप्त शक्ति का,
सदुपयोग करना ही धर्म है।
और दुष्टों का निग्रह नहीं करना,
शक्ति का दुरुपयोग करना है, अधर्म है।

राज्य शासन द्वारा अपने अधीनस्थ अल्प वेतनभोगी कर्मचारियों को पर्याप्त वेतन एवं सुविधाएँ दी जावें और उन्हें विकास के अवसर उपलब्ध कराये जावें। इन सिद्धान्तों का चित्रण निम्नांकित पंक्तियों में उत्कृष्ट ढंग से किया गया है-

थोड़ी सी/तन की भी चिन्ता होनी चाहिए,
तन के अनुरूप वेतन अनिवार्य है,
मन के अनुरूप विश्राम भी।
मात्र दमन की प्रक्रिया से,
कोई भी क्रिया, फलवती नहीं होती है,

शासन का महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम है अल्प बचत के लिये प्रोत्साहन। आचार्य श्री ने यह तथ्य इन पंक्तियों में अभिव्यक्त किया है-

धन का मितव्यय करो,
अति व्यय नहीं,
अपव्यय तो कभी नहीं,
भूलकर स्वप्न में भी नहीं।

देश तथा प्रदेश में फैलता हुआ आतंक सामान्य जन की सतत उपेक्षा, उपहास, शोषण और अपमान का परिणाम है। यह स्थापित करते हुए आचार्य श्री नीति-निर्धारकों को महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन देते हैं-

मान को टीस पहुँचने से ही,
आतंकवाद का अवतार होता है।
अतिपोषण और अतिशोषण का भी
यही परिणाम होता है तब
जीवन का लक्ष्य बनता है, शोध नहीं,
बदले का भाव प्रतिशोध।
जो कि महा अज्ञानता है,
दूरदर्शिता का अभाव,
पर के लिए नहीं,
अपने लिए भी घातक।
नहीं-नहीं-नहीं/अभी लौटना नहीं।
अभी नहीं-कभी भी नहीं,
क्योंकि अभी/आतंकवाद गया नहीं,
उससे संघर्ष करना है अभी
यह कृत संकल्प है/अपने ध्रुव पर दृढ़।
जब तक जीवित है आतंकवाद
शक्ति का श्वास ले नहीं सकती/धरती यह,
ये आँखे अब/आतंकवाद को देख नहीं सकतीं
ये कान अब/आतंकवाद का नाम सुन नहीं सकते,
यह जीवन की कृत संकल्पित है कि
उसका रहे या इसका
यहाँ अस्तित्व एक का रहेगा।

अधिकारियों के लिए सन्त समागम जीवन में संतोष के आविर्भाव का अमोघ उपाय है-

संत समागम की यही तो सार्थकता है,
संसार का अन्त दिखने लगता है,
समागम करने वाला भले ही,
तुरन्त संत संयत/बने या न बने
इसमें कोई नियम नहीं है/किन्तु वह
संतोषी अवश्य बनता है।
सही दिशा का प्रसाद ही
सही दशा का प्रासाद है।

दण्डसंहिता का प्रमुख लक्ष्य अपराधी की उद्दण्डता को दूर करना है, उसे क्रूरतापूर्वक पीड़ित करना नहीं। आचार्यश्री कांटो को काटने की नहीं बल्कि उनके घावों को सहलाने की शिक्षा देते हैं। वे पापी से नहीं पाप से, पंकज से नहीं पंक से घृणा करने की सीख देते हैं-

प्राणदण्ड से औरों को तो शिक्षा मिलती है,
परन्तु, जिसे दण्ड दिया जा रहा है,
उसकी उन्नति का अवसर ही समाप्त।
दण्ड संहिता इसको माने या न माने
क्रूर अपराधी को,
क्रूरता से दण्डित करना भी
एक अपराध है,
न्याय मार्ग से स्खलित होना है।

न्याय शास्त्र का यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि चोरी करने वाला तथा चोरी की प्रेरणा देने वाला दोनों समान रूप से दोषी हैं। आचार्य श्री इस सिद्धान्त से भी आगे बढ़कर उद्घोष करते हैंकि चोर को चोरी की प्रेरणा देने वाला चोर से अधिक दोषी है-

चोर इतने पापी नहीं होते,
जितने की चोरों को पैदा करने वाले।

राजनीति, प्रशासन और न्यायपालिका राज्यशक्ति के महत्वपूर्ण स्तंभ है। मनुष्य को इन शक्तिस्तंभों के विभिन्न पदों पर सदैव बने रहने की तृष्णा घेर लेती है। यह तृष्णा अत्यधिक कष्ट दायक होती है। पद लिप्सा के दुष्परिणामों को कवि ने निम्न पंक्तियों में रेखांकित किया है और उससे दूर रहने की प्रेरणा दी है-

जितने भी पद हैं,
वे विपदाओं के आस्पद हैं,
पद लिप्सा का विषधर वह
भविष्य में भी हमें न सूँघे,
बस यही कामना है, विभो।

अधिकारियों के लिए सन्त की यह सीख माननीय है-

धरती की प्रतिष्ठा बनी रहे,
और
हम सबकी,
धरती में निष्ठा घनी रहे बस।

30, निशात कालोनी,
भोपाल (म.प्र.)-462003

कोऽन्धो योऽङ्कार्यरतः को वधिरो यः श्रृणोति न हितानि।
को मूको यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति।।

अन्धा कौन है? जो अनुचित कार्य में लगा है। बहरा कौन है? जो हित की बात नहीं सुनता। गूँगा कौन है? जो समय पर प्रिय बोलना नहीं जानता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शंका समाधान

पं. रतनलाल वैनाडा

शंका - क्या तीन कम नौ करोड़ मुनिराज हमेशा मध्य लोक में विद्यमान रहते हैं?

समाधान - छठे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक के मुनिराजों की संख्या आगम में इस प्रकार वर्णित है- प्रमत्तसंयत 59398206 + अप्रमत्त संयत 29699103 + तीनों उपशमक 897 + उपशांत मोह 299 + तीनों क्षपक 1794 + क्षीण मोह 598 + सयोगकेवली 898502 + अयोग केवली 598 = 89999997 ।

अब प्रश्न यह है कि यह संख्या शाश्वत मुनिराजों की है या उत्कृष्टतया है। इस संबंध में सर्वार्थसिद्धि के अन्त में दिये गये आचार्य प्रभाचन्द्र विरचित वृत्तिपद, पृष्ठ 395 पंक्ति 19 में लिखा है 'सर्वेऽप्येते प्रमत्ताद्ययोगकेवल्यन्ताः समुदिता उत्कर्षेण यदि कदाचिदेकस्मिन् संभवन्ति तदा त्रिहीननवकोटिसंख्या एव भवन्ति।' अर्थ- प्रमत्त संयत से लेकर अयोग केवली पर्यन्त ये सभी संयत उत्कृष्टरूप से यदि एक समय में एकत्र होते हैं तो उनकी संख्या तीन कम नौ करोड़ होती है। इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि तीन कम नौ करोड़ संख्या शाश्वत नहीं है बल्कि उत्कृष्टता की अपेक्षा है। लेकिन आचार्य प्रभाचन्द्र जी ने जो 'एक समय में एकत्र होते हैं लिखा है' उसका तात्पर्य इस प्रकार समझना चाहिए- 'संयतों की यह संख्या कभी भी एक समय में न जानकर विवक्षा भेद से कही जानी चाहिए। कारण कि न तो उपशम श्रेणी के चारों गुणस्थानों में से प्रत्येक में एक ही समय में अपने-अपने गुणस्थान की संख्या प्राप्त होना संभव है और न क्षपक श्रेणी के चारों गुणस्थानों में से प्रत्येक में एक ही समय में अपने अपने गुणस्थान की उत्कृष्ट संख्या प्राप्त होना संभव है। हाँ, उपशम श्रेणी और क्षपकश्रेणी के प्रत्येक गुणस्थान में, क्रम से अपने-अपने गुणस्थान की संख्या का काल-भेद से अवश्य प्राप्त होना संभव है। कारण कि जो जीव 8 समयों में इन श्रेणियों के आठवें गुणस्थान में चढ़ें, वे ही तो अन्तमुहूर्त बाद नौवें गुणस्थान में पहुँचते हैं। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए और इस प्रकार समय भेद से अन्तर्मुहूर्त के भीतर सब संयतों की उक्त संख्या बन जाती है, यहाँ ऐसा अभिप्राय समझना चाहिए।

(सर्वार्थसिद्धि-ज्ञानपीठ प्रकाशन का संपादकीय
पृ. 5-6 पंडित फूलचंद जी सिद्धांताचार्य)

इससे यह स्पष्ट होता है कि एक समय में, कभी भी न तो तीन कम नौ करोड़ मुनि हुए हैं और न हो ही सकते हैं। सामान्य बुद्धि से भी विचारणीय है कि यदि अयोगकेवली गुणस्थान में 598 मुनियों की संख्या शाश्वत मान ली जाए, तो अयोगकेवली गुणस्थान का काल 5 लघु अक्षर प्रमाण होने से, 5 लघु अक्षर काल में 598 जीवों को सिद्ध पद प्राप्त हो जाएगा अर्थात् 6 महीने 8 समय में असंख्यात् जीव सिद्ध बन जाएँगे जो स्पष्ट रूप से आगम बाधित है।

शंका - जन्मकल्याणक के समय जिन रत्नों की वर्षा होती है वे क्या वास्तविक होते हैं?

समाधान - तीर्थंकर भगवान के जन्म कल्याणक या आहार चर्या के समय जो रत्न वर्षा होती है, वे रत्न सच्चे ही होते हैं, साथ में अनमोल भी। उत्तरपुराण पृष्ठ 378 पर इस प्रकार कहा है - मगधदेश के कितने ही वैश्यपुत्र द्वारावती नगरी पहुँचे। वहाँ उन्होंने बहुत से श्रेष्ठ रत्न खरीदे, जो भगवान नेमिनाथ के गर्भ एवं जन्म कल्याणक के समय देवों द्वारा बरसाये गये थे और राजगृही जाकर उन रत्नों को भेंट देकर अर्धचक्री जरासंध के दर्शन किये। जरासंध उन रत्नों को देखकर चौंक उठा और उसने उन वैश्यपुत्रों से उनकी प्राप्ति का रहस्य पूछा। उत्तर में वैश्यपुत्रों ने कहा कि भगवान नेमिनाथ की उत्पत्ति का कारण होने से जो सब नगरियों में उत्तम है तथा याचकों से रहित है ऐसी द्वारावती नगरी में बहुत से रत्न विद्यमान हैं। हमने ये रत्न वहीं से प्राप्त किए हैं। इन वचनों को सुनकर और द्वारावती के वैभव का अनुमान कर जरासंध क्रोध से अंधा हो गया और यादवों का नाश करने के लिये निकल पड़ा।

वीरवर्धमानचरित्र (ज्ञानपीठ प्रकाशन पृष्ठ-125-26) में इस प्रकार लिखा है- तीर्थंकर वर्धमान की राजा कूल के यहाँ प्रथमपारणा होने पर राजा के आंगन में अंधकारनाशक अनमोल करोड़ों मणियों की स्थूल, अखण्ड, सघन धारासमूहों से फूलों की सुगंधी से मिश्रित जल वर्षा के साथ आकाश से भारी रत्न वर्षा हुई, जिसके द्वारा सारे राजांगण को पूरित देखकर सभी आश्चर्यचकित हो रहे थे।

इसेस यह स्पष्ट है कि ये रत्न अनमोल होते है, वास्तविक होते हैं तथा नगरी में अर्थाभाव को समाप्त कर धन से पूरित करने के लिये देवों द्वारा बरसाये जाते हैं।

शंका- चार आयु को अप्रतिपक्षी तथा चार गति को प्रतिपक्षी क्यों कहा गया है?

समाधान- जो प्रकृतियाँ अप्रतिपक्षी होती हैं उन प्रकृतियों का जिस समय बंध होता है, उस समय उनका अपना ही बंध होता है, और जब बंध नहीं होता तब नहीं होता है। परन्तु जो प्रकृतियाँ सप्रतिपक्षी होती है, उनके समस्त भेदों में से, किसी भी एक भेद का बंध प्रति समय होता ही है (बंध व्युच्छित्ति काल तक)। इस परिभाषा के अनुसार चार आयु अप्रतिपक्षी हैं क्योंकि जिन समयों में इनका बंध होता है, उन्हीं समयों में इनका बंध होता है, अन्य समयों में इनका बंध नहीं होता। तथा चार गतियाँ प्रतिपक्षी कही गई हैं, क्योंकि इनमें से, किसी एक गति का बंध प्रतिसमय होता ही रहता है।

शंका- आलू में कितने जीव पाये जाते हैं और वे बादर हैं या सूक्ष्म?

समाधान- आलू (साधारण) सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति का स्कन्ध है। एक आलू में असंख्यात साधारण शरीर होते हैं और प्रत्येक साधारण शरीर में अनन्तानन्त निगोदिया जीवों का निवास होता है। ये सभी निगोदिया बादर तथा सूक्ष्म दोनों होते हैं। कहा भी है-

बादर सुहुम णिगोदा, बद्धा पुट्ठा य एयमेएण।
ते हु अणंता जीवा, मूलयथूहल्लयादीहिं॥

(श्रीधवल पु. 14 पृ.231)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ - बादर निगोद जीव और सूक्ष्म निगोद जीव ये परस्पर बद्ध और स्पष्ट होकर रहते हैं। तथा वे अनंत जीव हैं जो मूली, थूअर तथा अदरख आदि के निमित्त से होते हैं। पं. रतनचंद जी मुख्तार, जीवकांड की टीका पृष्ठ 270 पर लिखते हैं- मूली, थूहर आर्द्रक आदि तथा मनुष्य आदि के शरीरों में असंख्यात लोकप्रमाण निगोद शरीर होते हैं। वहाँ एक-एक निगोद शरीर में अनंतानंत बादर निगोद जीव और सूक्ष्म निगोद जीव प्रथम समय में उत्पन्न होते हैं। ये एक शरीर में बद्ध स्पृष्ट होकर रहते हैं। आलू में रहने वाले ये जीव, आँखों से दिखाई नहीं पड़ते। इनके शरीर की अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है। अतः ये दूरबीन आदि यंत्रों के द्वारा भी दिखने में नहीं आते हैं। इस प्रकार आलू के या अन्य किसी भी कन्दमूल के एक कण का भक्षण करने में भी अनन्तानन्त निगोदिया जीवों की हिंसा होती है।

शंका- ऐसा सुनते हैं कि तीर्थंकर अपनी गृहस्थ अवस्था में णमोकार मन्त्र का उच्चारण नहीं करते। जबकि भगवान पार्श्वनाथ ने सर्प के जोड़े को णमोकार मन्त्र सुनाया था। स्पष्ट करें।

समाधान - चौबीस तीर्थंकरों के चरित्र का वर्णन करने वाला सबसे प्राचीन एवं प्रामाणिक ग्रन्थ उत्तरपुराण (रचयिता आचार्य गुणभद्र) है। इसमें भगवान पार्श्वनाथ के चरित्र में इस प्रकार लिखा है- 'नागी नागश्च संप्राप्तशमभावौ कुमारतः (77/118)। बभूवतु-रहीन्द्रश्च तत्पत्नी च पृथुश्रियो (77/119)। अर्थ- सर्प और और सर्पणी कुमार के उपदेश से शान्तिभाव कोप्राप्त हुए और मरकर बहुत भारी लक्ष्मी को धारण करने वाले धरणेन्द्र और पद्मावती हुए। भावार्थ- भगवान पार्श्वनाथ जब क्रीड़ा करने के लिय नगर से बाहर गये थे तब उनके साथ एक सुभौम कुमार भी थे। वे जब तपस्वी के पास पहुँचे तब उसके अहंकार को देखकर सुभौमकुमार ने उस तपस्वी को उपदेश दिया। उस उपदेश को सुनकर सर्प और सर्पणी शान्तिभाव को प्राप्त हुए और मरकर धरणेन्द्र और पद्मावती हुए। इन वचनों के अनुसार भगवान पार्श्वनाथ ने सर्प के जोड़े को णमोकार मन्त्र नहीं सुनाया था, यह स्पष्ट होता है।

शंका - क्या आयु कर्म का बन्ध जीव को एक पर्याय में एक बार ही होता है या अधिक बार भी होता है?

समाधान- एक जीव के एक भव में आयु बन्ध के योग्य आठ अपकर्ष होते हैं। इन आठ अपकर्षों में आयु कर्म का बन्ध अधिक से अधिक आठों बार भी हो सकता है जैसा कि श्री धवल पु. 10 पृष्ठ 233 पर कहा है- 'कर्मभूमि के मनुष्य और तिर्यंच अपनी भुज्यमान आयुस्थिति के दो विभाग बीत जाने पर वहाँ से लेकर असंक्षेपाद्धा काल तक परभव संबंधी आयु को बाँधने के योग्य होते हैं। उनमें आयुबन्ध के योग्य काल के भीतर कितने ही जीव आठ बार, कितने ही सातबार, कितने ही छहबार, कितने ही पांचबार, कितने ही चार बार, कितने ही तीनबार, कितने ही दो बार, कितने ही एकबार, आयु बन्ध के योग्य परिणामों से परिणत होते हैं, शेष निरुपक्रमायुष्क जीव अपनी भुज्यमान आयु में छह माह शेष रहने पर आयु बंध के योग्य होते हैं। यहाँ भी इसी प्रकार आठ अपकर्षों को कहना चाहिए। इससे स्पष्ट होता है, कि चारों ही गतियों के जीव अधिक से अधिक आठ बार और कम से कम एक बार आयुबन्ध अवश्य करते हैं। इतना अवश्य है कि एक जीव एक भव में एक ही आयु का बन्ध करता है। (देखें कर्मकाण्ड गाथा 642) अर्थात् यदि कोई जीव एक भव में आठ बार आयु कर्म बन्ध करता है तो उसने प्रथम बार में जिस आयु का बन्ध किया होगा अन्य बारों में उसी आयु का बन्ध होगा। अर्थात् यदि प्रथम अपकर्ष में देवआयु का बन्ध किया है तो अन्य अपकर्षों में आयु बन्ध होता है तो देव आयु का ही होगा अन्य आयु का नहीं। यदि आठों अपकर्ष कालों में आयु बंध न हो तो अंतिम असंक्षेपाद्धा काल में तो आयु बंध हो ही जाता है।

1/205, प्रोफेसर्स कालोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)

ग्रन्थसमीक्षा

'सद लगा के सन्त'

कवि- श्री लालचन्द्र जैन राकेश
प्रकाशक - ज्ञानोदय विद्यापीठ वल्लभ नगर, बी.एच.ई.एल. भोपाल, म.प्र. एवं दिगम्बर जैन मुनि संघ सेवा समिति, महावीर विहार, गंज बासोदा (म.प्र.)
मूल्य- 50 रुपये, पृष्ठ 204

कवि ने सहज, सुबोध, प्रसादगुणमयी विशिष्ट शैली में एक ऐसे महान् सन्त परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी की जीवनी अपनी काव्य धारा से निःस्यूत की है, जिनसे सम्पूर्ण भारत वर्ष के आबालवृद्ध सभी सुपरिचित हैं। रचनाकार ने इस कृति के द्वारा अनेक अपरिचित या अल्पज्ञात प्रसंगों का ज्ञान कराकर जन सामान्य के ज्ञान में वृद्धि की है। हिन्दी भाषी क्षेत्र के पाठकों को तो रचना सुबोध है ही, दक्षिणभारत में भी लोकप्रिय हो सकेगी। इस उपयोगी काव्यकृति के रचयिता और प्रकाशक दोनों साधुवाद के पात्र हैं।

रचना कथ्य और अभिव्यंजना-शिल्प की दृष्टि से प्रभावोत्पादक है। देशज शब्द और मुहावरे नगीने की भाँति जड़े हुए हैं। 'राकेश' जी की प्रतिभा और वैदुष्य की ज्ञापक इस कृति का सर्वत्र स्वागत होगा, ऐसा विश्वास है।

डॉ. भागचन्द जैन 'भागेन्दु'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर महावीर के उपदेशों की प्रासंगिकता

विद्यावारिधि डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया, डी.लिट्.

जीवन और जगत के संचालन में कालचक्र की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। उसका नित्य और निरन्तर ह्रास और विकास जीवन और जगत की अवनति और उन्नति का प्रतीक है। कालचक्र के चंक्रमण में जैनधर्म के पुरस्कर्त्ता तथा प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव कर्म-कला का प्रवर्तन करते हैं। तीर्थंकरी परम्परा में भगवान् महावीर अन्तिम और चौबीसवें तीर्थंकर थे।

जैनधर्म वस्तुतः प्राकृत धर्म है, कोई मत विशेष नहीं। मत किसी न किसी महान आत्मा द्वारा प्रवर्तित होता है। जैन धर्म का समय-समय पर तीर्थंकर तथा महामनीषी मुनिवृन्द द्वारा प्रचार और प्रसार होता रहा है। कालचक्र के प्रारंभ में भोग-भूमि की सुविधा उपलब्ध थी। इसके उपरान्त तीर्थंकर ऋषभदेव कर्मभूमि का प्रवर्तन करते हैं। विश्व के प्राचीनतम धर्मग्रन्थ ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर इनका उल्लेख उपलब्ध है। यजुर्वेद में भगवान ऋषभदेव मुक्तिदाता के रूप में समादृत हैं। अथर्ववेद में उन्हें आत्मिक बलशाली तथा प्रेम का आलोक पुरुष माना गया है। वैदिक वाङ्मय में ऋषभदेव अग्निदेव, परमेश्वर रुद्र, केशव, हिरण्यगर्भ, प्रजापति, ब्रह्मा, विष्णु तथा सूर्यदेव के रूप में पूजित हैं।

भगवान् ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र चक्रवर्ती भरत के नाम पर इस विशाल देश का नाम भारतवर्ष पड़ा और विद्यावैविध्य, कला तथा लिपि (ब्राह्मीलिपि) का सूत्रपात करने वाले भगवान् ऋषभदेव की परम्परा के अन्तिम तीर्थंकर तथा सत्य-अहिंसा के मसीहा भगवान महावीर लोक में समादृत रहे हैं।

भगवान महावीर विश्वात्मा के प्रतिनिधि थे। आज से 26 सौ वर्ष पूर्व वे वैशाली के राज घराने में उत्पन्न हुए। उस समय समाज में अधर्म ही धर्म था। संस्कृति के स्थान पर विकृति का बोलबाला था। तत्कालीन समाज में नारी निरी निरादृत और असहाय थी। दास प्रथा का प्रचलन था। धर्म के नाम पर घोर हिंसा (बलिप्रथा) व्याप्त थी। कैसा भयावह वातावरण महावीर के युग में प्रचलित था। राजा और प्रजा दोनों की आँखों के सामने मोह और मिथ्यात्व का परदा पड़ा हुआ था। परदे को हटाये बिना एक का भी उदय-उत्थान सम्भव नहीं था, फिर सर्वोदय की बात तो बहुत दूर थी।

भगवान् महावीर ने संन्यास लेकर द्वादशी तपश्चर्या के ब्याज से अपने उर-अन्तर में वीतरागता को जाग्रत किया। चतुर्विध संघ की स्थापना कर श्रमण-श्रमणी और श्रावक-श्राविका समान रूप से सभी के लिए आत्मोद्धार के द्वार खोल दिये।

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह जैसे जघन्य पापों से पीड़ित समाज के त्राण के लिए भगवान महावीर ने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, शील (ब्रह्मचर्य) तथा अपरिग्रह जैसे आत्मस्वभावी शुभ संकल्पों का प्रवर्तन किया। इन आत्म स्वभावों को यदि कोई भी सुधी साधक अपने अंतरंग में जाग्रत कर ले तो उसका और सबका इन तमाम मैली और मलीन मनोवृत्तियों से पिण्ड छूट सकता है। भगवान महावीर ने व्यक्ति अथवा वर्गोदय की नहीं अपितु सर्वोदय की कल्याणकारी देशना दी थी।

इतना ही नहीं राग और रोष से अनुप्राणित समाज में व्याप्त बौद्धिक प्रदूषण को शान्त और शमन करने के लिये भगवान महावीर की अनुपम देन है- अनेकान्त। अनेकान्त और स्याद्वाद् अर्थात् कथन की सप्तभंग-पद्धति के द्वारा वैचारिक द्वन्द्व का पूर्णतः समापन हो जाता है, जिसकी आज महती आवश्यकता है।

बड़े हर्ष का प्रसंग है कि आज देश-देशान्तर में बड़े उत्साह और उल्लास पूर्वक भगवान् महावीर की छब्बीस सौ वीं जन्म-जयन्ती 6 अप्रैल 2001 को 'अहिंसा दिवस' तथा पूरे वर्ष को जयन्ती वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। ऐसे पुनीत और पवित्र अवसर पर हम-सब मिलकर भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट दिव्य देशनाओं का शक्तिभर अनुपालन करें, स्वयं जियें और समस्त जीवों को जीने का सुअवसर प्रदान करें, तभी भगवान् महावीर के प्रति हमारा स्मरण और हमारी वन्दना वस्तुतः सार्थक मानी जायेगी।

'मंगल कलश' 394, सर्वोदय नगर,
आगरा रोड, अलीगढ़-202001

किं जीवितमनवद्यं, किं जाड्यं पाटवेऽप्यनभ्यासः।
को जागर्ति विवेकी का निद्रा मूढता जन्तोः।।

जीवन क्या है? पाप न करना। मूर्खता क्या है? बुद्धिमान् होते हुए भी शास्त्राभ्यास न करना। जागता कौन है? विवेकी। निद्रा क्या है? प्राणियों की मूढ़ता।

नलिनी दलगत-जललव-तरलं किं, यौवनं धनमथायुः।
के शशधरनिकरानुकारिणः सज्जना एव।।

कमलपत्र पर पड़ी हुई बूँदों के समान चंचल कौन है? यौवन, धन और आयु। चन्द्रमा की किरणों का अनुकरण करने वाले कौन है? सज्जन।

को नरकः परवशता किं सौख्यं सर्वसङ्गविरतिर्या।
किं सत्यं भूतहितं किं प्रेयः प्राणिनामसवः।।

नरक क्या है? पराधीनता। सुख क्या है? समस्त परद्रव्यों से विरक्ति। सत्य क्या है? प्राणियों का हित करना। प्राणियों को सर्वाधिक प्रिय क्या है? प्राण।

किं दानमनाकाङ्क्षं किं मित्रं यन्निवर्तयति पापात्।
कोऽलङ्कारः शीलं किं वाचां मण्डनं सत्यम्।।

दान क्या है? इच्छा का अभाव। मित्र कौन है? जो पाप से बचाता है। अलंकार क्या है? शील। वाणी का आभूषण क्या है? सत्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यंग्यकथा

सफेद शेर की नस्ल

● शिखरचन्द्र जैन

सरकार सफेद शेर की विलुप्त होती प्रजाति को लेकर चिन्तित रहती है। उसकी नस्ल को बचाने के लिए काफी धन खर्च करती है। लेकिन ईमानदारों की विलुप्त होती प्रजाति को बचाने के लिए कुछ नहीं करती। आज की भ्रष्ट राजनीतिक, प्रशासनिक और सामाजिक व्यवस्था में ईमानदार रहकर जीना कितना दूभर हो गया है, इस सत्य को अनावृत करती है हृदय को वेध देनेवाली यह व्यंग्यकथा और कोंचती है समाज के श्रीमन्तों, नेताओं और प्रबुद्धों को इस बात के लिए कि वे अपनी सम्पत्ति और सामर्थ्य का उपयोग भ्रष्ट होते हुए सार्वजनिक चरित्र को रसातल में जाने से रोकने के लिए करें।

किसी नगर में एक सेठ रहता था। उसके पास काफी धन था। बंगले थे, कारें थीं। कारखाने थे, दूकानें थीं। नौकर थे, नौकरानियाँ थीं। गोया वो सभी ताम-झाम थे जो उसे सेठ कहलाने का अधिकारी बनाते थे। इसके अलावा उसका एक भरा-पूरा परिवार था, पत्नी थी। बेटे थे, बेटियाँ थीं। दामाद थे, बहुएँ थीं। गर्ज ये कि सेठ का जीवन सुख, सुविधा वा सम्पन्नता से भर-पूर था।

यों किसी नगर में एक सेठ का होना और उसके पास काफी धन होना, अपने आप में कोई उल्लेखनीय बात नहीं है। क्योंकि प्राचीन काल से ही, सेठों का निवास, बहुधा नगरों में ही होता पाया गया है तथा विपुल धन राशि का होना सेठ कहलाने हेतु प्राथमिक आवश्यकता मानी जाती रही है। लेकिन जिस सेठ की चर्चा मैं यहाँ कर रहा हूँ, उसके संदर्भ में विशिष्टता यह रही कि उसने सारा का सारा धन निहायत ही ईमानदारी से कमाया था। और ईमानदारी भी कैसी? ग्वाले के द्वारा घर भिजवाए गए दूध की तरह शुद्ध नहीं, बल्कि सामने दुही गयी भैंस के दूध की तरह खालिस।

यहाँ, यदि आप आवश्यकता समझें तो थोड़ा विराम ले लें।' मैंने जो ऊपर कहा, उस पर विचार कर लें। मनन कर लें। पर यह बात तो मेरी आप मान कर ही चलें कि धन जो है सो ईमानदारी से भी कमाया जा सकता है और निर्धारित टैक्स अदा करने के बावजूद बचाया भी जा सकता है। खास कर उस परिस्थिति में जबकि कई व्यक्ति पागलपन की हद तक ईमानदार बने रहने की ठान ही लें और धन बढ़ाने की जल्दी में न हों।

कहते हैं कि सेठ का बचपन घोर विपन्नता में व्यतीत हुआ। अतः जब उसने धनोपार्जन प्रारम्भ किया तो उसने एक-एक पैसे को दाँत से पकड़ कर रखा। जो कमाया उसका ज्यादा से ज्यादा भाग व्यवसाय में पुनर्निवेश किया और कम से कम में घर का खर्च चलाया। जिसे उधार दिया, उससे सख्ती से वसूल किया और जिससे लिया उसका बड़ी ईमानदारी से समय पर भुगतान किया। धीरे-धीरे सेठ की मेहनत रंग लाई। पैसे ने पैसे को खींचा और धनराशि में समुचित वृद्धि होने लगी। इस सारी प्रक्रिया में ईमानदारी ने कब प्राथमिकता अर्जित कर ली, यह सेठ को खुद भी पता नहीं लगा। लेकिन व्यापार के क्षेत्र में सेठ की ईमानदारी एक मिसाल बन गई। सेठ की साख और इज्जत की तूती बोलने लगी। सेठ को सेठ जी कहा जाने लगा! अब इस बात को मद्देनजर रखते हुए आगे मैं भी सेठ को यथोचित आदर पूर्वक संबोधित करूँगा।

जीवन जब अनुकूल परिस्थियों में व्यतीत हो रहा हो, तब समय के गुजरने का आभास भी नहीं होता। सेठ जी कब युवा हुए, कब उनकी शादी हुई, कब बच्चे हुए, कब बच्चों की शादी हुई, कब नाती-पोते हुए कुछ पता ही नहीं लगा कि एक रोज सेठ जी गंभीर रूप से बीमार पड़ गए। उन्होंने खटिया पकड़ ली। फौरन डाक्टर-वैद्य-हकीम तलब हुए। सेठ की जाँच हुई और सभी ने एक स्वर में घोषित किया कि सेठ वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुके हैं और जिस बीमारी से ग्रसित हैं, उसका नाम है बुढ़ापा।

जवानी और बुढ़ापे की बीमारी में फर्क होता है। उसके इलाज में भी फर्क होता है। जवानी की बीमारी में जहाँ दवा-दारू और सेवा-सुश्रूषा की प्रधानता होती है, वहाँ बुढ़ापे की बीमारी में इनकी मात्रा कम, धर्म की चर्चा अधिक होती है। रोगी को धार्मिक कथाएँ सुनाना चालू हो जाता है। और कुल मिलाकर एक ऐसा वातावरण निर्मित किया जाता है जिससे उसे संसार असार नजर आए। अगले भव से प्रेम बढ़े। परलोक सुधरे।

कुछ इसी तरह के माहौल में जब सेठ जी बिस्तर पर पड़े-पड़े कराह रहे थे तब पैताने से आवाज आयी- 'दान बोलो, दान।'

सेठ का कराहना बंद हो गया। उन्होंने साश्चर्य तीनों ओर अपनी आँखें घुमाई, फिर बोले- क्यों?

'ऐसे समय में मोह ममता का त्याग ही कल्याणकारी होता है।' किसी ने कहा!

'कैसे समय में?' सेठ ने जिज्ञासा की!

जो बात सेठ को समझ लेना चाहिए थी, वो समझ नहीं रहे थे। सच ही कहा है कि बुढ़ापे में मति मारी जाती है। और साथ में यदि बीमारी हो तो फिर भ्रष्ट ही समझना चाहिए! तिस-पर भी, परिजन, दान वाली बात को भूलने नहीं देना चाहते थे। अतः बात को कुछ और स्पष्ट करते हुए एक ने कहा -'परलोक की सोचिए सेठजी, परलोक की। यह जीवन तो भगवत्कृपा से आपका, बड़ा ही सुखमय बीता। निश्चय ही पूर्वोपार्जित पुण्य कर्मों का प्रतिफल रहा। लेकिन अब अगले जन्म पर भी तो ध्यान देना होगा न! दान-पुण्य का, कहते हैं, बड़ा प्रताप होता है।'

सेठ जी को कुछ न सूझा तो वो पुनः कराहने लगे।

दान की बात विस्मृत न हो पाये इस उद्देश्य से बातचीत का सूत्र एक अन्य परिजन ने हथियाते हुए कहा- 'वैसे आपने तो सेठ जी इस जन्म में भी पुण्य ही पुण्य किए हैं। आप जैसे महापुरुष बिरले ही पैदा होते हैं। फिर भी परलोक तो परलोक ही होता है। जाने कब कैसी जरूरत पड़ जाये। दान का महात्म्य सेठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जी! इहलोक और परलोक दोनों में माना जाता है।'

सेठ ने सुनकर भी अनसुनी करते हुए कराहने की गति में वृद्धि कर दी।

तकरीबन सभी ने महसूस किया कि सेठ की तबीयत बद से बदतर होती जा रही है। वरना इतने महत्वपूर्ण विषय पर क्या इस कदर चुप्पी साध लेते?

'दान किए बिना देह त्यागने पर अशुभ गति प्राप्त होती है, ऐसा शास्त्र कहते हैं।' एक ने धीरे से सेठानी के कानों में कहा- 'आप ही कुछ कहिए! क्या आप चाहती हैं कि....'

'नहीं! नहीं!' कहते हुए सेठानी ने पति के पैर पकड़ लिए और फूट-फूट कर रोने लगीं। रोते रोते ही उन्होंने नाक सुड़की। शेष बची हुई को साड़ी के कोने से पोंछते हुए बोलीं- 'अंतिम समय मेरी बात न रखोगे क्या?'

सेठ ने सहसा कराहना बंद कर दिया। बोले- 'अंतिम समय? ये क्या कह रही हो भागवान।'

'हाय! होनी को कौन रोक पाया है।' कहते हुए सेठानी ने एक दुहत्तड़ अपनी छाती पर दे मारा और बाकायदा मूर्छित हो गईं।

सेवकों ने उन्हें सम्हाला। पानी के छींटे दिए। सेठानी ने होश में आते ही पतिचरणों पर जकड़न बढ़ा दी। बोलीं- दान बोलो दान। इस मुई दौलत में धरा क्या है। इसे कौन साथ लाया है और कौन साथ ले जायेगा? हाय! समय रहते बोल क्यों नहीं जाते कुछ?' इतना कह वह पुनः मूर्छित हो गई।

सेठ जी ने परिस्थिति की गंभीरता को भाँपा। दान बोले बिना कोई उपाय नज़र नहीं आ रहा था। यों सेठ जी कभी किसी के दबाव में नहीं आए पर पत्नी की हालत पर उन्हें काफी तरस आ रहा था। मजबूरी में ही सही, बोले- 'सुनो भागवान, तुमने कही और हमने मानी। दान हम बोल देते हैं, पर एक शर्त है।'

'सो क्या?' दो-चार बेसब्र स्वर इकट्ठे उभरे। सेठानी को भी होश आ गया।

'यदि मैं चल बसा तो दस लाख रुपये या इसके ऊपर जो तुम चाहो, जहाँ देना हो, दान में दे देना। लेकिन ...' कहते कहते सेठ ने भयंकर रूप से खाँसना प्रारंभ कर दिया। नर्स ने फौरन सहारा देकर उन्हें अधलेटा किया पर खाँसी थी कि रुकती ही नहीं थी। परिजनों के मन में 'लेकिन' गड़ रहा था। कहीं ऐसा न हो कि अब और कुछ कह ही न पायें।

लेकिन ऐसा हुआ नहीं। खाँसी रुकी। और फिर आश्वस्त होकर सेठ ने कहा- 'यदि मैं स्वस्थ हो गया तो दस लाख रुपये की यह राशि मैं अपनी मर्जी से दान दूँगा।'

'हाँ, क्यों नहीं, क्यों नहीं?' प्रसन्नता की लहर उठी।

'स्वस्थ तो सेठ जी आप हो ही रहे हैं। अभी आपकी उम्र ही क्या है? साठा सो पाठा।' किसी ने कहा।

सेठ जी ने राहत की साँस ली और इतमीनान से लेट गए।

अब दान का प्रताप कहिए, दवा का असर कहिए, परिजनों की सेवा कहिए या महज संयोग, सेठ जी कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गए। चलने फिरने लगे।

और फिर यहीं से आरम्भ हुई सेठ की परेशानी। दान दें तो किसे दें? कब दें? किस हेतु दें? ये कुछ ऐसे प्रश्न थे जिनके उत्तर सहज ही नजर नहीं आ रहे थे। इस समस्या पर सेठ जितना विचार करते उतना ही और उलझ जाते! शारीरिक रूप से सेठ स्वस्थ तो हो गए थे पर मानसिक तनाव से ग्रस्त हो गए।

यहाँ दान के संदर्भ में अपनी परम्परा को समझ लेना समीचीन होगा। हमारा इतिहास दानवीरों के आख्यानों से पटा पड़ा है। जहाँ एक ओर शूरवीर कर्ण, राजा बलि और हरिश्चन्द्र जैसे दान दाता हमारे पूर्वज रहे हैं वहीं दूसरी ओर दान लेने वालों में स्वयं भगवान बावन अवतारी सर्वोपरि हैं। दान देना एक पुण्य-कार्य है। धन्य हैं वो लोग जो कि दान दे देते हैं। अपनी कमाई का एक भारी अंश, बिना किसी प्रत्यक्ष लाभ के, अपने से अलग करने का हौसला दिखाते हैं। निश्चय ही यह एक जीवट का कार्य है जो कि केवल उनके द्वारा किया जा सकना संभव है जिनमें मोह त्याग की भावना कूट-कूट कर भरी जा चुकी हो। अतः दानवीरों का सम्मान किया जाना उचित ही माना जाना चाहिए। वैसे कहते हैं कि दान दाता उपकार नहीं करता बल्कि पुण्य-कार्य करने का अवसर प्राप्त कर उपकृत होता है। और जो दान प्राप्त करता है वह उपकृत नहीं होता बल्कि दान दाता को पुण्य कमाने का अवसर प्रदान कर उपकार कर रहा होता है।

यह उपकृत होने - करने की परम्परा, समय के साथ, अपने मूल उद्देश्य से कहीं बहुत आगे निकलकर अब काफी व्यापकता प्राप्त कर चुकी है। दान लेने-देने की प्रथा में अभूतपूर्व परिवर्तन हुए हैं। नए नए क्षेत्र और आयाम जुड़े हैं। पहले जहाँ दान का संबंध प्रायः धार्मिक स्थलों, अनाथ आश्रमों, धार्मिक पाठशालाओं और गरीबों-याचकों तक सीमित था वहाँ आज दान की पैठ पब्लिक स्कूलों, प्राइवेट इंजीनियरिंग-मेडिकल कालेजों और इसी तरह की अनेक संस्थाओं में गहराई तक हो चुकी है। प्राकृतिक विपदाओं से निपटने का कार्य भी अब मुख्यतः दान पर निर्भर होता जा रहा है। देश में सूखे की स्थिति हो या बाढ़ की अथवा भूकंप से तबाही हो, इनका मुकाबला करने में देश-विदेश से प्राप्त दान का बड़ा महत्त्व होता है। देश की सरकार चलाने का जिम्मा जिन राजनीतिक पार्टियों पर है उनकी गतिविधियाँ तो पूर्णतः दान के सहारे ही संचालित है। इसका नमूना तो दुनिया भर ने अभी अभी स्पष्ट रूप से देखा-सुना है। दान के उद्देश्य में भी अब विविधता आती जा रही है। ज्यादातर लोग तो होली-दीवाली के समय भी जो चंदा देते हैं उसके पीछे लोक-कल्याण की भावना कम और उपद्रवी तत्त्वों को शांत रखने की भावना ज्यादा मानते हैं। कई एक मामलों में, दान देने के पीछे, संभावित परेशानियों से वर्तमान और भविष्य में बचे रहने का उद्देश्य होता पाया गया है। और यह उद्देश्य जब कुछ ज्यादा प्रभावी होता है तो दान देकर कुछ लाभ उठा लेने की ओर मुड़ जाता है।

अतः सेठ की द्विविधा को यदि उपर्युक्त पृष्ठभूमि में देखा जाये तो सेठ का दान राशि के सार्थक उपयोग को लेकर आशंकित होना, सर्वथा तर्कसंगत लगता है। कुपात्र को दान देने से पाप का बंध होता है, ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। इसलिए सेठ की यह चिंता कि दान दें तो किसे दें, किस हेतु दें, पूर्णतः उचित समझी जानी चाहिए।

बहुत सोच विचार करने के बाद भी जब सेठ को इस समस्या का हल नहीं सूझा तो उन्होंने अपने विश्वस्त मुनीम से सलाह ली। मुनीम ने तत्काल समाचार पत्रों में विज्ञापन देने का सुझाव दिया और तदनुसार अनेक समाचार पत्रों में लोगों ने निम्नांकित विज्ञापन पढ़ा -

'दान देना है दस लाख रुपये की राशि। जो व्यक्ति या संस्था इस राशि का सार्थक उपयोग कर सके वह दानदाता से सम्पर्क कर अपनी योजना से अवगत करावे। योजना में दान दाता के संतुष्ट होने पर ही दान दिया जाएगा।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुबह के अखबारों में विज्ञापन प्रकाशित हुआ और दोपहर तक सेठ के दरवाजे पर लोगों की लाइन लग गई। स्थानीय जनता के अलावा आस-पास के गाँवों-नगरों से भी लोगों के आने का सिलसिला आरम्भ हो गया। लाइन की लम्बाई बढ़ने लगी और बढ़ते बढ़ते जब नगर के चौराहे पर यातायात के लिए समस्या बनने लगी तो ट्रैफिक पुलिस हरकत में आई। उसने सेठजी को शीघ्र ही स्थिति सम्हालने को कहा। सेठ ने भी तत्काल लोगों को आदर पूर्वक बैठाने का इंतजाम किया और एक एक कर आगन्तुकों से मिलना प्रारंभ कर दिया।

प्रथम अभ्यागत का विस्तृत परिचय प्राप्त कर, सीधे विषय पर आते हुए सेठ जी ने पूछा - 'कहिए आपकी योजना क्या है?'

'मैं एक मंदिर बनवाना चाहता हूँ।' अभ्यागत ने कहा।

'कहाँ?'

'इसी शहर में।'

'इस शहर में?' सेठ जी ने साश्चर्य कहा- 'यहाँ तो अनेक मंदिर हैं।'

'जहाँ मैं बनाना चाहता हूँ, वहाँ नहीं है।'

'आप कहाँ बनवाना चाहते हैं?'

'उस जगह जहाँ तीन नई कालोनियाँ प्रस्तावित हैं।'

'हाँ!'..... कहते हुए सेठ जी ने थोड़ा विराम लिया फिर पूछा- 'जमीन? मंदिर के लिए जमीन क्या सहज ही मिल जायेगी वहाँ?'

'कब्जा करना होगा। कर लिया जाएगा।' अभ्यागत ने उत्तर दिया।

'यह क्या अनुचित कार्य नहीं होगा?' सेठ ने जिज्ञासा की।

'धार्मिक स्थल के लिए जमीन प्राप्त करने का यही तरीका प्रचलन में है आजकल! इस हेतु सरकारी जमीन सर्वथा उपयुक्त मानी जाती है। रात के अँधेरे में, वांछित भूमि पर, थोड़ा सा निर्माण कार्य कर लिया जाए तो फिर उसे हटाने की हिम्मत कोई नहीं करता। कुछ रोज हो-हल्ला होता है फिर स्थिति सामान्य हो जाती है।'

'पर यह तो जोर-जबरदस्ती हुई।' सेठ ने कहा।

'धर्म की प्रभावना के लिए इतना तो करना ही पड़ता है।' अभ्यागत ने स्पष्ट किया!

'तब, ऐसा तो सभी धर्मावलम्बी करना चाहेंगे।'

'करना चाहेंगे?' अभ्यागत ने प्रतिप्रश्न कर स्वयं उत्तर देते हुए कहा- 'करते ही हैं।'

'फिर तो इससे झगड़े की नौबत आ सकती है। वैमनस्य पैदा हो सकता है।'

'धार्मिक स्थान पर निर्माण को लेकर झगड़े की नौबत आना कौन सी नई बात होगी हमारे लिए? यह तो होता ही है।' अभ्यागत ने इत्मीनान से कहा।

इस अकाट्य तर्क से सेठ जी निरुत्तर हो गए। उन्होंने तत्काल अभ्यागत को धन्यवाद दे भेंट-समाप्ति का संकेत दिया।

इस तरह एक-एक कर अतिथियों से भेंट का सिलसिला कई दिनों तक चला। सुबह से शाम तक सेठ रोज अभ्यागतों से मिलते। उनकी योजनाएँ जानते। किसी से दस मिनिट चर्चा होती तो किसी से दो मिनिट। पर कोई भी योजना उन्हें संतुष्ट न कर सकी। कुछ ही दिनों में भीड़ छँटने लगी। लोगों की समझ में यह आने लगा कि सेठ की अंटी से दान की राशि ढीली करवाना किसी के वश की बात नहीं है। फिर भी कौतूहलवश कुछ लोग आते और लाइन में लग जाते। पर यह भी ज्यादा दिन नहीं चला।

सेठ का धैर्य जवाब देने लगा तो उन्होंने फिर मुनीम को बुलाया। मुनीम ने निहायत ही शांति से स्थिति का जायजा लिया। उसे पता लगा कि आगंतुकों में एक व्यक्ति ऐसा भी था जो पहले दिन से ही रोज यहाँ आता रहा है पर सेठ जी से भेंट करने हेतु कभी पंक्तिबद्ध नहीं हुआ। मुनीम ने तत्काल उस व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित किया और पूछा- 'क्या आपके पास भी कोई योजना है?'

'है तो सही। पर मुझे नहीं लगता कि सेठ जी को पसंद आएगी।'

'ऐसा आप क्यों सोचते हैं? कृपया एक बार सेठ जी से मिल तो लीजिए।' कहते हुए मुनीम उसे सेठ जी के पास ले गया।

सेठ ने आगंतुक को सादर बैठा कर उसका परिचय पूछा।

'मैं एक सरकारी कर्मचारी हूँ जो पिछले एक वर्ष से सेवा से निलंबित हूँ।' आगंतुक ने कहा।

'किस कारण से? कोई घपला किया था क्या?' सेठ ने पूछा।

'जी नहीं! घपला करने में साथ नहीं दिया था इसलिए।' आगंतुक ने उत्तर दिया।

'अच्छा!' सेठ जी ने आश्चर्य चकित होकर कहा- 'ऐसा भी होता है?'

'ऐसा बहुधा होता है।' आगन्तुक ने कहा- 'जो लोग सरकारी विभागों की कार्य प्रणाली से परिचित हैं, उन्हें इस पर कोई आश्चर्य नहीं होगा। दर असल, बेईमानी और भ्रष्टाचार सरकारी कामों में, इस कदर घर कर गए हैं कि ईमानदार कर्मचारी का संतुलन बनाए रखना असंभव होता जा रहा है। और फिर सरकारी कामों में ही क्यों? राजनीतिक क्षेत्र में, सामाजिक कार्यों में, हर जगह बेईमानी का बोल-बाला है। अब तो, सेठजी! लोगों को विश्वास ही नहीं होता कि कोई ईमानदार भी हो सकता है। विश्वास का संकट पैदा हो गया है। एक ईमानदार व्यक्ति को यह सिद्ध कर पाना कि वह ईमानदार है, मुश्किल है, बहुत मुश्किल।' इतना कह आगंतुक ने एक गहरी साँस लेकर विराम लिया।

'तो इस मामले में आप मुझसे क्या चाहते हैं।' सेठ ने पूछा।

'होता यों है सेठ जी कि जब किसी ईमानदार कर्मचारी को झूठे मामले में फँसा कर निलंबित कर दिया जाता है तब कुछ समय बाद आर्थिक तंगी के कारण उसका मनोबल टूटने लगता है। ऐसे समय यदि उसे कहीं से मदद मिल सके तो वह टूटने से बच सकता है। जब मैंने आपका विज्ञापन पढ़ा तो मुझे लगा कि इस दान-राशि से एक ट्रस्ट बनाकर मदद की जा सकतीहै। पर आप तक पहुँचने की हिम्मत नहीं जुटा पाया।' इतना कह आगंतुक ने दो घूँट पानी पिया फिर कुछ भावुक होकर कहा, 'सुनते हैं सेठ जी कि सरकार सफेद शेर की विलुप्त होती प्रजाति को लेकर चिंतित रहती है। सफेद शेर की नस्ल बचाने के लिये काफी धन खर्च करती है। पर ईमानदारों की विलुप्त होती प्रजाति को बचाने के लिये कुछ नहीं करती। सेठ जी, यदि आप चाहें तो दान राशि देकर ईमानदारों की नस्ल बचाने की दिशा में पहला कदम उठा सकते हैं। आपने मुझे शांति से सुना, धन्यवाद! जाने के लिए आज्ञा चाहूँगा।'

सेठ आश्वस्त हो गया। उसने अनुभव किया कि उसे दस लाख के दान के लिये सार्थक उद्देश्य प्राप्त हो गया है। उसने निलम्बित कर्मचारी को इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये आवश्यक योजना बनाने का काम सौंप दिया।

56, ए मोतीलाल नेहरू नगर (पश्चिम)
भिलाई - 490020 (दुर्ग) छत्तीसगढ़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारीलोक

हमारा पहनावा : हमारी पहचान

● डॉ. ज्योति जैन

वेशभूषा न केवल हमारी शारीरिक और सामाजिक आवश्यकताओं का निर्वाह करती है, बल्कि हमारी सांस्कृतिक मनोभूमि का भी परिचय देती है। उससे हमारे जीवन के लक्ष्य और आदर्श प्रतिध्वनित होते हैं। स्पृहणीय आदर्शों के अनुरूप वेशभूषा का प्रयोग तदनुरूप संस्कारों की उत्पत्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रस्तुत आलेख इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य पर प्रकाश डालता है।

भारतीय संस्कृति विशेषकर जैन संस्कृति ने 'सादा जीवन उच्च विचार' वाली उक्ति को आदर्श मानकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सादगी को महत्त्व दिया है। हमारे आचार्य, मुनिवर, संत, महात्मा भी सादगी को जीवन में उतारने की प्रेरणा देते हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी कहते थे कि हमें अपने दरवाजे, खिड़कियाँ खुली रखनी हैं ताकि बाहर की स्वच्छ ताजा हवा आ सके तथा भीतर की गंदगी बाहर निकल सके। हवा चाहे पश्चिम की हो या पूरब की, उत्तर की हो या दक्षिण की, हर हवा में एक ताजगी होती है और जब कभी प्रदूषित हवा का झौंका आये तो खिड़की दरवाजे बंद कर लेना चाहिए। पर आज हम आँख मूँद कर अपने सारे दरवाजे खोले बैठे हैं और पश्चिम की विकृत सभ्यता एवं संस्कृति को बेलगाम होकर अपनाये जा रहे हैं।

भारत लम्बे समय तक विदेशियों का गुलाम रहा। इससे हमारी संस्कृति सर्वाधिक प्रभावित हुई है। ब्रिटिश शासन के दौरान हमारा एक वर्ग उनके खुलेपन से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उनकी संस्कृति, खानपान, पहनावा सभी अपनाने में गर्व सा महसूस करने लगा। इस वर्ग ने हमारी संस्कृति को ठेस पहुँचायी जो हमारी अपनी पहचान थी। भारत एक विशाल देश है। यहाँ विभिन्न धर्मों, जातियों एवं संस्कृति के लोग रहते हैं, जलवायु की भिन्नता भी है। प्रत्येक क्षेत्र का अलग-अलग पहनावा है। भारत को ही लें तो व्यक्ति का पहनावा उसके व्यक्तित्व का परिचय देता है। विश्व की किसी भी देश में साड़ी पहने महिला दिख जाये तो निश्चित ही उसे भारत का समझा जायेगा। पगड़ी पहने हो तो उसे सिक्ख समझा जायेगा। हमारे देश के पहनावे की अलग ही विशेषता एवं उपयोगिता है।

समूह से अलग दिखने की प्रवृत्ति के कारण ही विभिन्न वेषभूषाओं का जन्म होता है। ठीक है, व्यक्तित्व की पहचान कपड़ों से होती है पर 'सादा जीवन उच्च विचार' वाली संस्कृति में सादगी से परिपूर्ण वस्त्र ही व्यक्ति को गरिमा प्रदान करते हैं। वस्त्र ऐसे सादे स्वच्छ एवं शालीन हों जिन्हें देखकर मन में किसी प्रकार का विकार पैदा न हो, चलने-फिरने या काम करने में बाधा न हो, किसी तरह का शारीरिक कष्ट उत्पन्न न हो और सबसे प्रमुख बात यह कि व्यक्ति की गरिमा व मर्यादा बनी रहे।

आज हम विदेशी पहनावे से अधिक प्रभावित हो रहे हैं, अधिकांश पहनावा फूहड़ और भड़कीला होता जा रहा है। जन सामान्य में भी खत्म न होने वाली एक फैशन की होड़ शुरू हो गयी है। याद कीजिए, गाँधी जी ने एक धोती से ही विश्व में भारत का लोहा मनवा लिया था, चाहे वह इंग्लैंड का राज दरबार हो या भारत में वाइसराय की मीटिंग। लेकिन आज हम अपनी संस्कृति को छोड़ पाश्चात्य संस्कृति को अपनाने में आगे बढ़ रहे हैं। विशेषकर युवा पीढ़ी तो बेलगाम होती जा रही है। पहनावे के नाम पर जो परोसा जा रहा है उसे हमारी युवा पीढ़ी हाथों हाथ ले रही है। विभिन्न स्त्री-पुरुषों के मॉडलों के माध्यम से पहनावे के उत्तेजित रूप रोज ही सामने आ रहे हैं, ये आकर्षक वस्त्र उत्तेजना बढ़ाने वाले होते हैं। इनका व्यापक प्रचार-प्रसार कर जो मायाजाल फैलाया जा रहा है उसमें ग्राहक स्वयं निर्णय नहीं कर पाता कि उसे क्या खरीदना है? क्या नहीं? क्या फैशनके नाम पर कुछ भी पहनना हमारा दिमागी दिवालियापन नहीं है? फैशन की इस भूलभुलैया में व्यक्ति कपड़ों पर ज्यादा धन खर्च करने लगा है। 'जितनी चादर उतने पैर फैलाओ' की जगह चादर से ज्यादा पैर फैलाने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। पहिले दो-चार जोड़ी कपड़ों से काम चल जाता था पर आज आलमारियाँ कपड़ों से अटी पड़ी हैं। शायद कुछ कपड़ों के पहनने का तो नम्बर ही नहीं आता है।

आज संस्कृति की बात हो या धार्मिकता की, सामाजिक परिवेश की हो या पहनावे की, महिलाओं का उत्तरदायित्व समाज के प्रति बढ़ा हुआ ही दिखाई देता है। समाज निर्माण में योगदान हो या उसकी विकृतियों को दूर करने की पहल हो, दारोमदार अंततः महिलाओं पर ही होता है। क्योंकि माँ ही पहली शिक्षिका होती है। अतः नारी ही संपूर्ण परिवेश को प्रभावित कर समाज को सही दिशा प्रदान कर सकती है।

बदलते समय और बदलते परिवेश में आधुनिक पहनावे के प्रभाव से महिलाएँ भी अछूती नहीं रही हैं। वे भी वस्त्रों की चकाचौंध और आकर्षण का शिकार हो रही हैं। वस्त्रों और उनकी डिजाइनों के माध्यम से स्त्री-पुरुष-बच्चे, सभी को एक सुन्दर वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। आधुनिकता की इस होड़ में आधुनिक दिखने की लिप्सा पैदा होती जा रही है। भू-मंडलीकरण के नाम पर बढ़ती हुई बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बाढ़ क्या हमारी बाजार व्यवस्था के चिन्तन और चरित्र पर प्रहार नहीं कर रही हैं? क्या आधुनिक ड्रेसों का पहनना हाई सोसाइटी का प्रतीक नहीं बनता जा रहा है? क्या हम भोगवादी संस्कृति को बढ़ावा नहीं दे रहे हैं?

विकृत पोशाकों और शारीरिक प्रदर्शन के माध्यम से नारी की छवि को विकृत किया जा रहा है। नारी छवि को आज बाजार का केन्द्र-बिन्दु माना जा रहा है। सिनेमा, टी.वी.,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इंटरनेट, मॉडलिंग के माध्यम से नित नये फैशनेबल कपड़े दिखाये जाते हैं। गाँव-गाँव, शहर-शहर और देश-विदेश में बढ़ती सौंदर्य प्रतियोगिताएँ और उनमें शामिल फैशन-परिधान एक व्यामोह सा पैदा कर रहे हैं। आधे-अधूरे वस्त्र पहिनने में संकोच का अनुभव नहीं हो रहा है। आज फूहड़ और भड़कीली अश्लील पोशाकों से नारी की अस्मिता ही खतरे में पड़ गयी है। बढ़ती हुई बलात्कार छेड़छाड़ की घटनाएँ और आंकड़े पूछते हैं कि क्या नारी सुरक्षित है? पहनावे का अमर्यादित रूप हमारे नैतिक मापदण्डों पर सही नहीं उतर पा रहा है अतः हम अपने विवेक का प्रयोग करें और अपने आपको भोग्या के रूप में पेश न करें।

हम 21वीं सदी में आ गये हैं। हरक्षेत्र में मानो चमत्कार हो रहे हैं क्या आर्थिक, क्या राजनैतिक, क्या सामाजिक, क्या शैक्षणिक पर सबसे अधिक चमत्कार हुए हैं तो वह है हमारे पहनावे में, हमारी ड्रेस में। अपनी रुचि के अनुसार वस्त्र पहनना प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है। समय के साथ वेशभूषा में परिवर्तन आया है आज की पीढ़ी अपने पहनावे के प्रति सजग है, व्यक्तित्व के निर्धारण में पहनावे की उपयोगिता दिख रही है। अपनी कद-काठी रूप रंग और अपने काम काज के हिसाब से वस्त्रों को चुनना उचित है। व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाने में पहनावे का योगदान महत्त्वपूर्ण है। यहाँ तक कि कम्प्यूटर के माध्यम से ड्रेस सेट होने लगी है। ड्रेस का चयन उचित ढंग से हो तो व्यक्ति की गरिमा बढ़ती है। लेकिन सिर्फ फैशन या दिखावे के नाम पर कुछ भी पहनना हमारे मापदण्डों पर सही नहीं उतरता। यदि आप एयरहोस्टेस या ऐसी ही कोई सर्विस में हैं तो आधुनिक ड्रेस आपकी पर्सनालिटी का हिस्सा है। पर यदि एक हाउस वाइफ सब्जी का थैला लिये आधुनिक ड्रेस पहनकर बाजार जाये या कॉलेज की छात्रा आधुनिक ड्रेस पहनकर कॉलेज जाये तो विसंगति दिखाई देगी ही।

पहनावे का जिक्र हो तो आधुनिक ड्रेस जीन्स का चर्चा होना सहज है। एक रिक्शा चालक से लेकर बहुराष्ट्रीय कम्पनी के उच्च अफसर तक जीन्स के दीवाने नजर आते हैं। यूं तो जीन्स की अनेक खूबियों ने छोटे-बड़े सभी के बीच इसे लोकप्रिय ड्रेस बना दिया है पर मौके-बेमौके और फूहड़ तरीके से इस पोशाक के प्रदर्शन ने इसे आलोचना का केन्द्र भी बनाया है। इसके प्रदर्शन को देखते हुए अनेक बार स्कूल-कॉलेजों के प्रिंसिपल, स्वयंसेवी संस्थाओं ने इसके विरोध में आवाज उठायी है। पर कौन किसकी सुन रहा है। शुरूआत तो हम सबको स्वयं करनी पड़ेगी और इस धारणा को भी बल देना पड़ेगा कि 'कपड़े कपड़ों की तरह पहनो शो पीस की तरह नहीं।'

इस फैशनेबिल प्रवृत्ति के दोषी माता-पिता भी हैं। बचपन से ही बच्चों को एक से एक आधुनिक टिपटॉप ड्रेस पहनाकर शो बाजी करते हैं। मेरा बच्चा सबसे अलग दिखे, सोसाइटी में हमारा रौब रहे ऐसी ड्रेस किसी के पास न हो। ऐसे माहौल में बड़े हुए बच्चों में कपड़ों के नित नये-फैशन अपनाने की होड़ लगी रहती है।

धार्मिक कार्यों में भी हमें पहनावे में शालीनता बरतनी चाहिए। मंदिर सादे वस्त्र पहनकर ही आना चाहिए। हमारे यहाँ धोती दुपट्टा, साड़ी धार्मिक पोशाक हैं। पर कुछ भी पहनने की छूट से हमारी धार्मिक मर्यादा को ठेस पहुँची है। धार्मिक उत्सव, समारोहों में पेंट शर्ट, जीन्स पहने पूजन करते देख थोड़ा-बहुत क्षोभ तो होता ही है।

आज पूरा विश्व संस्कृति को बचाने की मुहीम में लगा है, विकसित देशों विशेषकर दक्षिण पूर्वी एशिया, अफ्रीका आदि देशों में उनकी संस्कृति के साथ खिलवाड़ हो रहा है। कृत्रिम और भोगवादी पाश्चात्य जीवन शैली को अपनाकर हम सुख समृद्धि नहीं अपितु विनाश को गले लगा रहे हैं, हम पहनावे के माध्यम से अपनी संस्कृति को गरिमामय बनाएँ और बदलती हुई परिस्थितियों में अपने जीवन मूल्यों को बचाएँ और संयमित जीवन शैली अपनायें।

हम भ. महावीर की 2600वीं जन्म जयन्ती मना रहे हैं। उनका प्रमुख सिद्धांत अपरिग्रह है। हम सब नियम लें कि कपड़ों/ड्रेसों की एक सीमा निश्चित करेंगे। कपड़ों से भरी अलमारियों में से कुछ कपड़े जरूरत मंद लोगों में वितरित कर देंगे। समय रहते चेतें और आने वाली पीढ़ी को सुसंस्कारित करें।

6, शिक्षक आवास
श्री कुन्दकुन्द (पीजी)
कालेज, खतौली -251201 उ.प्र.

गजल

भूल और सुधार

● *ऋषभ समैया 'जलज'*

भूल

जो नहीं अपने, उन्हें अपना बनाने निकले,
खुद पे आती है हँसी, कैसे दीवाने निकले।

जलके खुद खाक हुआ, अपनी विरासत का महल,
जिन कषायों से, जमाने को जलाने निकले।

नाव खूँटे से बँधी, खूब चली पतवारें,
पार तरने के शुभारंभ, बहाने निकले।

काँच पत्थर से भरी झोलियाँ खनकती हैं
हाथ से हाय! कोहनूर खजाने निकले।

सुधार

राग और द्वेष की काजल की कोठरी में जब,
शुद्ध समभाव का सुखदीप जलाने निकले।

शुद्ध का लक्ष्य लिए, शुभ की डगर पर चलकर,
भेद-विज्ञान चरण, मंजिलें पाने निकले।

पर में खोजा तो भटकने के सिवा कुछ न मिला,
रत्नत्रय कीमती खुद अपने सिरहाने निकले।

उनकी महिमा का कोई पार नहीं है साथी,
तत्त्व की प्रीति से , निज आत्म सजाने निकले।

निखार भवन, कटरा बाजार, सागर -470002 म.प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुद्धिचातुर्य की कथाएँ

प्रस्तुति - श्रीमती चमेलीदेवी जैन

अप्रैल 2001 के 'जिनभाषित' में आपने चतुर बालक रोहक के बुद्धिचातुर्य का प्रदर्शन करने वाली दो कथाएँ पढ़ी थीं। अब तीन कथाएँ और प्रस्तुत की जा रही हैं।

मरणासन्न हाथी

उज्जयिनीनरेश की हस्तिशाला का एक हाथी रुग्ण हो गया। हस्ति-चिकित्सकों ने हाथी को देखा और कहा कि इसका रोग असाध्य है, यह बच नहीं पायेगा। यह कुछ ही दिनों का मेहमान है। राजा ने विचार किया- इस मरणासन्न हाथी के माध्यम से रोहक के बुद्धि-कौशल की परीक्षा की जाए। यह सोचकर राजा ने वह मरणासन्न हाथी नट-ग्राम में भिजवा दिया। हाथी के साथ उसके खाने-पीने की काफी सामग्री भी भिजवा दी। साथ ही साथ राजा ने गाँव वालों को यहआदेश भिजवाया- 'यह हाथी रुग्ण है। इसे पर्याप्त खाना पीना दें। इसकी सेवा करें तथा इसके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में नित्य प्रति समाचार भेजते रहें, किन्तु, कभी भूलकर भी मुझे यह समाचार न दें कि हाथी की मृत्यु हो गई है। यदि किसी ने आकर यह समाचार दिया तो मैं उसे प्राण-दण्ड दूँगा।'

नट बड़े भयभीत हुए। हाथी की भली-भाँति देख-रेख, सेवा-परिचर्या करते हुए। आखिर एक दिन हाथी की मृत्यु हो गई। नट बहुत दुःखित हुए, अब क्या करें। हाथी के स्वास्थ्य-संबधी समाचार नित्य-प्रति भेजने के क्रम के अंतर्गत राजा को सूचित करना आवश्यक था। किन्तु, हाथी के मरने का समाचार कहना उनके लिए दुःशक्य था, क्योंकि वैसा कहने वाले के लिए राजा की ओर से मृत्यु-दण्ड निर्धारित था। वे चिन्तित थे कि हाथी के स्वास्थ्य के संबंध में कुछ भी सूचना न देने से राजा क्रुद्ध होगा तथा हाथी के मरने की सूचना देने का उनको साहस हो नहीं रहा था।

उन सबकी आशा का केन्द्र रोहक था। उन्होंने उसके समक्ष अपनी चिन्ता उपस्थित की। रोहक ने उन्हें अच्छी तरह समझा दिया कि वे राजा को इसका क्या उत्तर दें। नट राजा के पास आये। उन्होंने राजा से कहा- 'महाराज! आपका हाथी तो अपनी जगह से उठता तक नहीं है।'

दूसरा बोला- 'हाथी का उठना तो दूर रहा, उसके तो कान तक नहीं हिलते। उसके नेत्रों की पलकें तक नहीं झपकतीं, नेत्रों की पुतलियाँ भी स्थिर हैं।'

राजा ने कहा- 'क्या हाथी की मृत्यु हो गई?'

तीसरे ने कहा - 'अन्नदाता! हम तो ऐसा नहीं बोल सकते, पर आपका हाथी न घास खाता है और न पानी ही पीता है।'

चौथा नट बोला- 'राजन्! और बातें तो दूर रहीं, आपका हाथी साँस तक नहीं लेता।'

राजा झुँझलाया और पूछने लगा- 'सच-सच कहो, क्या हाथी मर गया?'

नटों ने कहा- 'अन्नदाता! ऐसे शब्द हम कैसे कह सकते हैं? ऐसा कहने के तो आप ही अधिकारी हैं। हाथी के स्वास्थ्य सम्बन्धी समाचार आप तक पहुँचाना हमारा काम है। उसके स्वास्थ्य की जैसी स्थिति है, हमने आपको निवेदित कर दी है।'

नटों की बातचीत में रोहक की बुद्धिमत्ता बोल रही है, यह राजा ने मन-ही-मन अनुभव किया। वह प्रसन्न हुआ। उसने नटों को पारितोषिक दिया। नट वापस अपने गाँव को आ गये।

गाँव का कुआँ नगर में भेजो

राजा इतना होने पर भी कुछ और परीक्षा करना चाहता था। उसने एक दिन नट-ग्राम के नटों के पास अपना संदेश भेजा- 'तुम्हारे गाँव में एक कुआँ है। उसका जल बहुत मधुर और शीतल है। हमारे नगर में ऐसा कुआँ नहीं है। अपने गाँव के कुएँ को हमारे नगर में भेज दो। यदि ऐसा नहीं कर सके तो तुम कठोर दंड के भागी बनोगे।' ज्यों ही नटों को यह संदेश मिला, वे तो घबरा गए। वे रोहक से बोले- 'पहले की तरह हमको तुम ही इस संकट से बचा सकते हो।'

रोहक ने राजा को कैसे उत्तर दिया जाए, यह युक्ति उनको बतला दी। तद्नुसार वे नट राजा के पास आए और जैसा रोहक ने समझाया था, वे राजा से बोले-'महाराज! हमारे गाँव का कुआँ हम गाँववासियों की तरह बड़ा भोला है। अकेले नगर में आने में उसे बड़ी झिझक है, संकोच है। वह कहता है कि मैं अपने जातीय जन उज्जयिनी के कुएँ के साथ वहाँ जा सकता हूँ। अकेला नहीं जा सकता। अकेले जाने में बहुत झिझकता हूँ।

'स्वामिन! आप से विनम्र निवेदन है, आप उज्जयिनी के किसी कुएँ को हमारे साथ हमारे गाँव भेज दें। वहाँ से दोनों कुएँ आपके पास आ जायेंगे।'

उज्जयिनी-नरेश मुस्कुराया, मन-ही-मन समझ गया, यह रोहक की बुद्धि का चमत्कार है।

पूर्व के वन को पश्चिम में करो

राजा ने सोचा- रोहक की एक परीक्षा और ले लूँ। वह इसमें सफल रहा तो उज्जयिनी बुला लूँगा।

राजा ने नटों के पास सन्देश भेजा कि तुम्हारे नट-ग्राम की पूर्व दिशा में एक वन है, उसको तुम पश्चिम दिशा में कर दो।

गाँव के नट बड़ी उलझन में पड़े कि वन को पूर्व दिशा से उठाकर पश्चिम दिशा में कैसे लाया जा सकता है। रोहक ने उन्हें इस समस्या का समाधान देते हुए कहा- 'अपन लोगों को चाहिए कि वन के दूसरी ओर जाकर अपना गाँव बसा लें।' सबने अपनी घास-फूस की झोपड़ियाँ, मिट्टी के कच्चे घर वन की दूसरी ओर बना लिए। वहीं बस गए। फलतः वह वन स्वयं ही नटों के गाँव की पश्चिमी दिशा में हो गया।

राजा को यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा ने अब तक जितने भी प्रकार से परीक्षा की, रोहक उन सब में उत्तीर्ण हुआ। अब राजा के मन में उसे अपने पास बुलाने की तीव्र उत्कंठा उत्पन्न हुई।

मुनिश्री नगराजकृत 'आगम और त्रिपिटक' से साभार

137, आराधना नगर, भोपाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमती विमला जैन जिला न्यायाधीश का सम्मान

बड़े बाबा के महामस्तकाभिषेक समारोह के अवसर पर 23 फरवरी 2001 को कुण्डलपुर में परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी, उनके संघस्थ सभी साधुओं एवं आर्यिकाओं के सान्निध्य में श्रीमती विमला जैन, जिला एवं सत्र न्यायाधीश को भारत सरकार के कपड़ामंत्री श्री धनंजय कुमार जी द्वारा ब्राह्मी-सुन्दरी-अलंकरण, 2001 से सम्मानित किया गया। डॉ. सुधा मलैया द्वारा सन् 2001 में बाह्मी एवं सुन्दरी के नाम पर यह अलंकरण स्थापित किया गया है।

संविधानज्ञाता, चिंतक, लेखिका और कुशल गृहिणी, जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायिक सेवा क्षेत्र में सुविख्यात श्रीमती विमला जैन ने महाविद्यालयीन शिक्षा पूर्ण करने से लेकर न्यायिक शिक्षा की कठिन चुनौतियों तक का मुकाबला जिस लगन और आत्मसाधना से किया है, वह प्रत्येक महिला के लिए अनुकरणीय है।

विधि-विधायी कार्यों के साथ श्रीमती विमला जैन अनेक सामाजिक एवं साहित्यिक संस्थाओं से भी सरोकार रखती हैं। उन्होंने पर्यावरण, न्यायिक एवं ज्वलंत सामाजिक मुद्दों पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन किया है। 'भारत में पर्यावरण विधि' (अंग्रेजी) तथा 'म.प्र. नगर विकास संहिता' (हिन्दी) इन दोनों पुस्तकों से उनके बहुआयामी चिंतन तथा विषय पर पकड़ की झलक मिलती है। न्यायपालिका, महिला कल्याण, धार्मिक तथा सामाजिक जागृति के क्षेत्र में रचनात्मक भूमिका के लिए उन्हें सरकारी-गैर सरकारी संगठनों द्वारा पुरस्कृत किया गया है। अपने कार्य के सिलसिले में श्रीमती जैन ने विश्व के अनेक देशों में भ्रमण किया है तथा अपने व्यापक अनुभवों का उपयोग जनसेवा तथा न्यायिक कार्यों में कर रही हैं।

श्रीमती जैन के पति श्री सुरेश जैन, मध्यप्रदेश सरकार के वरिष्ठ अधिकारी हैं और उनके सतत प्रयासों से भोपाल में आचार्य विद्यासागर इंस्टीट्यूट आफ मैनेजमेंट स्थापित की गई है। 'जिनभाषित' परिवार की ओर से श्रीमती विमला जैन को हार्दिक बधाई।

सम्पादक

प्रो. रतनचन्द्र जैन का सम्मान

दिनांक 2 मई 2001, गंजबासोदा (विदिशा) म.प्र.। यहाँ विराजमान परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के सुयोग्य शिष्य पूज्य मुनिश्री क्षमासागर जी एवं पूज्य मुनिश्री भव्यसागर जी के शुभ सान्निध्य में श्री गीताज्ञान-आराधना-स्वतंत्र पारमार्थिक न्यास गंजबासौदा की ओर से 'जिनभाषित' के सम्पादक प्रो. रतनचन्द्र जी जैन के सम्मान का भव्य समारोह आयोजित किया गया। न्यास की स्थापना 'जैनमित्र' के भूतपूर्व सम्पादक स्व. पं. ज्ञानचन्द्र जी 'स्वतंत्र' की स्मृति में उनकी ज्येष्ठ पुत्री डॉ. आराधना जैन ने की है।

सम्मानविधि का प्रस्तुतीकरण अभिनव शैली में किया गया जो अत्यंत मनोहर था। इसके शिल्पी पूज्य मुनिश्री क्षमासागर जी थे। उनकी सन्निधि में सम्पन्न किया जाने वाला प्रत्येक समारोह, चाहे वह विद्वत्संगोष्ठी हो या विद्वत्सम्मान, उनकी चारुत्वदर्शी, वैज्ञानिक सुबुद्धि का स्पर्श पाकर रमणीय और स्मरणीय बन जाता है। उनकी कार्यशैली के विशिष्ट गुण है : आत्मानुशासन, समयानुशासन, वचनानुशासन और आचरणानुशासन। उनके सम्पर्क मात्र से सम्पूर्ण समाज का हृदय इन गुणों में परिनिष्ठित हो जाताहै। वह एक सूत्र में आबद्ध होकर अपने गुरु की बतलाई हुई रूपरेखा को कार्यान्वित करने के लिय यंत्रचालित सा सक्रिय दिखाई देने लगता है। मुनिश्री की कार्यशैली में भावसौन्दर्य, वाक्सौन्दर्य, आचरणसौन्दर्य, वेशसौन्दर्य, वस्तुसौन्दर्य, दृश्यसौन्दर्य, संस्कृतिसौन्दर्य और प्रस्तुतिसौन्दर्य इन बहुविध सौन्दर्यों का संगम होता है। इन समस्त अनुशासनों और सौंदर्यों से मण्डित था यह सम्मान-समारोह। वह भारतीय संस्कृति और जैनसंस्कृति की सुगन्ध बिखरते हुए, सम्मानभावना को अपनी चरम गरिमा के साथ अभिव्यक्ति देते हुए तथा दर्शकों के हृदय में वात्सल्यरस, प्रमोदभाव एवं गुणज्ञता का संस्कार उद्बुद्ध करते हुए यथाभिलषित परिणति को प्राप्त हुआ।

गंजबासौदा के सम्पूर्ण दिगम्बर, श्वेताम्बर और तारणतरण समाज ने एक हृदय हो मुनिश्री के प्रति एवं विद्वद्गुणों के प्रति समर्पण भाव से सम्मान समारोह में योगदान किया। तीनों समाजों के प्रतिनिधियों ने एक-एक कर आकर्षक प्रशस्तिपत्र एवं अनेक उपयोगी उपहारों से प्रो. रतनचन्द्र जी के प्रति अपनी आदरभावना प्रकट की। उपहारों का प्रकार एक विद्वान् और श्रावक के ही अनुरूप था, जैसे जिनपूजा के रजतपात्र, पूजापरिधानः धोती-दुपट्टा, घड़ी, पेन आदि। नकद राशि भी थी जो प्रो. रतनचन्द्र जी ने न्यास को ही दान कर दी।

समारोह की गरिमा में वृद्धि की आमंत्रित विद्वानों और श्रीमानों ने जिनमें शीर्षस्थ थे : प्रो. (डॉ.) भागचन्द जी 'भागेन्दु' श्री सुरेश जैन आई.ए.एस. एवं स्व. पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य के सुपुत्र श्री विभवकुमार जी कोठिया, बीना। स्थानीय विद्वान् प्रो. पी.सी. जैन, श्रीनन्दन जी दिवाकीर्ति एवं पं. लालचन्द्र जी राकेश ने समारोह को सफल बनाने में सक्रिय योगदान किया।

अन्त में अपने प्रवचनामृत की वर्षा करते हुए पूज्य मुनिश्री क्षमासागर जी ने प्रो. रतनचन्द्र जी को शुभाशीष प्रदान किया कि वे जिनवाणी एवं 'जिनभाषित' की सेवा करते हुए अणुव्रतों से ऊपर उठने की भावना रखें एवं प्रयत्न करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्त-समागम

आचार्य श्री विद्यासागर जी

सन्तशिरोमणि परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज 40 दिगम्बर मुनिराजों के साथ अतिशय क्षेत्र बहोरीबन्द (कटनी, म.प्र.) में विराजमान हैं। यहाँ षट्खण्डागम की 13वीं पुस्तक की वाचना चल रही है। यहाँ भगवान् शांतिनाथ की 16 फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान है।

6 अप्रैल को बहोरीबंद में आयोजित महावीर जयंती में जैन अजैनों ने भारी तादाद में हिस्सा लिया। सुबह 11 बजे अचानक मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह जी हेलीकाप्टर से वहाँ पहुँचे तथा उन्होंने आचार्यश्री के चरणों में अपना मस्तक रखते हुए कहा कि 'आप अहिंसा का संदेश देते हैं, मैं आपके पास अहिंसा के लिये संकल्पित होने आया हूँ। मुख्यमंत्री ने आचार्यश्री से आशीर्वाद माँगा कि मध्यप्रदेश अहिंसक राज्य बने, सर्वत्र सुख शांति हो। उन्होंने कहा कि राज्य सरकार प्रदेश में कोई भी नया बूचड़खाना नहीं खुलने देगी तथा मांस निर्यात के लिये एक भी जानवर प्रदेश में नहीं कटने दिया जायेगा।

इस अवसर पर आचार्यश्री ने कहा कि संत उन सभी व्यक्तियों को मंगल आशीर्वाद देते हैं जो शुभ कार्यों में संलग्न रहते हैं।

मुनिश्री क्षमासागर जी

परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के सुयोग्य शिष्य पूज्य मुनि श्री क्षमासागर जी मुनि श्री भव्यसागर जी के साथ गंजबासोदा (जिला विदिशा) में विराजमान हैं। प्रातः 8.30 से प्रतिदिन मुनिद्वय के मार्मिक प्रवचन होते हैं और आहार के बाद तथा सायंकाल मुनि श्री क्षमासागर जी द्वारा शंका समाधान किया जाता है, जिसमें जिज्ञासुओं और श्रोताओं की अपार भीड़ रहती है।

मुनिश्री समतासागर जी एवं श्री प्रमाणसागर जी

पूज्य मुनि श्री समतासागर जी एवं पूज्य मुनि श्री प्रमाणसागर जी पूज्य ऐलक श्री निश्चयसागर जी सहित सागर (म.प्र.) में विराजमान हैं। मुनि संघ सागर की वर्णी कालोनी स्थित दिगम्बर जैन मंदिर में ठहरा हुआ है। यहाँ अभूतपूर्व धर्मप्रभावना हो रही है।

मुनि श्री नियमसागर जी

पूज्य मुनि श्री नियमसागर जी कोपरगाँव (महाराष्ट्र) में विराजमान हैं। इस माह उनके सान्निध्य में श्री जिनबिम्बप्रतिष्ठा तथा पंचकल्याणक महोत्सव का भव्य आयोजन किया गया।

आर्यिका दृढ़मतीजी

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की विदुषी शिष्या आर्यिका श्री दृढ़मती जी आर्यिका संघ के साथ विदिशा के स्टेशन मंदिर में विराजमान हैं। यहाँ आचार्यश्री द्वारा रचित मूकमाटी महाकाव्य की वाचना हो रही है। विदिशा में माताजी के प्रवचन सुनने भारी तादाद में जैन-अजैन एकत्रित हो रहे हैं।

आर्यिका आदर्शमती जी

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की योग्य शिष्या आर्यिका आदर्शमती जी ससंघ सागर जिले की खुरई तहसील में विराजमान हैं।

गायों की रक्षा हेतु सम्पर्क करें

संतशिरोमणि 108 आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की प्रेरणा तथा आशीर्वाद से हम गायों की रक्षा के कार्य में लगे हुए हैं। हमने दिल्ली की विभिन्न गोशालाओं में गायों की देख-रेख (चारे आदि की व्यवस्था) कर रखी है।

ऐसा देखने व सुनने में आया है कि कई लोग गायों की रक्षा करने के लए कार्य तो करना चाहते हैं लेकिन साधन व रखने की जगह न होने केकारण वे इस कार्य को कर नहीं पा रहे हैं। जो भी व्यक्ति इस पुनीत कार्य को करना चाहते हों वे हमसे सम्पर्क कर सकते हैं। हम यथाशक्ति उनकी मदद करेंगे।

सम्पर्क के लिये हमारा पता -

मुकेश कुमार जैन,
5911/8, स्वदेशी मार्केट,
सदर बाजार, दिल्ली-110006

श्री सुरेन्द्रकुमार जी का असामयिक निधन

दिनांक 8 मई को ईटानगर की विशेष हैलीकाप्टर उड़ान के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने से केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्रालय के उप सचिव श्री सुरेन्द्र कुमार जी के असामयिक दुःखद निधन पर दिगम्बर जैन महासमिति कोटा संभाग हार्दिक दुःख प्रकट करती है।

श्री सुरेन्द्र कुमार जी कई वर्षों तक अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासमिति के केन्द्रीय समिति के मंत्री रहे हैं। वे वर्तमान में विभिन्न जैन संस्थाओं जैसे अ.भा. तीर्थ क्षेत्र रक्षा कमेटी, अ.भा. दिगम्बर जैन परिषद्, शीर्ष जैन संस्थाओं की समन्वय समिति आदि के सक्रिय पदाधिकारी थे। वे महावीर इन्टरनेशनल के उपाध्यक्ष भी थे।

टाइम्स आफ इंडिया के साहू अशोक कुमार जैन के आप काफी नजदीक थे और उनके द्वारा संचालित काफी संस्थाओं का वह मार्गदर्शन करते थे।

दिगम्बर जैन महासमिति इस अवसर पर भगवान से प्रार्थना करती है कि उन्हें सद्गति प्राप्त हो एवं उनके पारिवारिक जनों को इस दुःख को सहने की शक्ति प्राप्त हो।

अकलंक विद्यालय एसोसिएशन कोटा तथा भगवान महावीर 2600वाँ जन्मोत्सव राजस्थान राज्य दि. जैन समिति कोटा संभाग ने भी हार्दिक दुःख प्रकट किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्व. पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य : श्रद्धासुमनाञ्जलि

● धर्मदिवाकर पं. लालचन्द्र जैन 'राकेश'

कोसा नहीं भाग्य को जिसने, ललकारा पुरुषार्थ को।
श्रद्धा-सुमन समर्पित हैं, उस धर्म क्षेत्र के पार्थ को॥

1

जब भारत माँ के हाथों में, थीं हथकड़ियाँ भारी।
पैरों में थीं पड़ी बेड़ियाँ, शासक अत्याचारी॥
तब सागर के 'पारगुवाँ' में, थी बज उठी बधाई।
'गल्लीलाल' -'जानकी' के घर, थी बसंत ऋतु आई॥
पुत्र-रत्न पा सबने समझा, जीवन के चरितार्थ को।
श्रद्धा सुमन समर्पित हैं, उस धर्म क्षेत्र के पार्थ को॥

2

काल और दुर्भाग्य ने मिलकर, जीवन में विष घोला।
केवल सात कदम चल पाये, साथ पिता ने छोड़ा॥
पर, बोलो सूरज-प्रकाश को, रोक सकी क्या निशा अँधेरी।
घिस 'पन्ना' बन 'लाल' चमकता, यद्यपि हो सकती है देरी॥
ऊष्मा में तपकर ही पाता, जीवन अपने सार्थ को।
श्रद्धा-सुमन समर्पित हैं, उस धर्म क्षेत्र के पार्थ को।

3

जन्म ग्राम तज सागर आये, माँ-आँचल की छाया।
गणेश प्रसाद वर्णी का तुमने, शुभाशीष तब पाया॥
लौकिक शिक्षा रुची न किंचित्, धार्मिक पथ अपनाया॥
'अ' से 'ज्ञ' तक आत्मसात कर, सब जिह्वाग्र बसाया॥
पढ़-लिख कर गुरु का पद पाया, लक्ष्य किया धर्मार्थ को।
श्रद्धा-सुमन समर्पित हैं, उस धर्मक्षेत्र के पार्थ को॥

4

ग्रंथों का मंथन करके, सम्यक् नवनीत निकाला।
सोत्साह शिष्यों में वितरण, करने का व्रत पाला॥
रोम-रोम में घृतमय करके, प्रवचन पटुता पायी।
शब्द-शब्द में जिनगंगा की, शीतल-सुरभि समायी॥
निज-हित साधन किया, किन्तु प्राधान्य दिया परमार्थ को।
श्रद्धा सुमन समर्पित है, उस धर्मक्षेत्र के पार्थ को।

5

भारतीय गौरव-गरिमा को, तुम उत्कर्ष प्रदाता।
सादा जीवन उच्च विचारों, के सच्चे उद्भाता॥
राजनीति से दूर, नीति पथ के अनन्य अनुयायी।
पर-निन्दा, मात्सर्य किसी से, तुम को तनिक न भायी॥
हाथ पकड़ सन्मार्ग दिखाया, अपनाया लोकार्थ को।
श्रद्धा-सुमन समर्पित है, उस धर्मक्षेत्र के पार्थ को।

6

जिनवाणी माँ के चरणों में, अगणित पुष्प चढ़ाये।
लेखन-सम्पादन-अनुवादन, के सुकार्य अपनाये॥
अगम बने ग्रन्थों को तुमने, सबको सुगम बनाया।
आर्षमार्ग पर खुद चलकर, सबको सन्मार्ग दिखाया।
तुम जीवन भर रहे समर्पित, सरस्वती - सेवार्थ को।
श्रद्धा सुमन समर्पित हैं, उस धर्मक्षेत्र के पार्थ को॥

7

रत्नप्रसविनी भारत माता, हुई है जिनसे उन्नतभाल।
उन रत्नों में एक रतन है, श्रीयुत पंडित पन्नालाल॥
सागरसम व्यक्तित्वधनी से, सागर ने धन्यता पायी।
जिनकी वाणी की मिठास से, कोयल भी शरमायी॥
वासंती विद्वत्ता द्वारा, साधा सदा परार्थ को॥
श्रद्धा सुमन समर्पित हैं उस धर्म क्षेत्र के पार्थ को॥

8

सब गिरियों में उच्च हिमालय की छबि है यशवाली।
सब ऋतुओं में ऋतु वसन्त है, सर्वाधिक मतवाली॥
नदियों में गंगा, वृक्षों में, चन्दन है गुणवाला।
विद्वानों में पंडित जी का, है स्थान निराला॥
बारम्बार नमन है मेरा, विद्वानों के सार्थ को।
श्रद्धा-सुमन समर्पित हैं, उस धर्म क्षेत्र के पार्थ को॥

नेहरू चौक, गली नं. 4,
गंजबासौदा, विदिशा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री विद्यासागर के सुभाषित

- प्रभु का अवलम्बन लेकर प्रभु बना जा सकता है।
- पंच परमेष्ठी की आराधना विषय कषायों से बचने के लिये होती है।
- पाप से भीति बिना भगवान् से प्रीति नहीं और भगवान् से प्रीति बिना आत्मा की प्रतीति नहीं।
- अपने मित्र और आत्मीय बन्धु को देखकर जितनी प्रसन्नता होती है उससे भी अधिक प्रसन्नता जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करने से होनी चाहिए।
- जैन दर्शन में व्यक्ति नहीं व्यक्तित्व पूजा गया है, यही कारण है कि अनादि-अनिधन गुणों में स्थित पंच परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है।
- जब तक हमारा सम्बन्ध भगवान से है तभी तक हम भक्त कहलाने के अधिकारी हैं।
- जिन और जन में इतना ही अन्तर है कि एक वैभव के ऊपर बैठा है और एक के ऊपर वैभव बैठा है।
- भक्ति-आराधना सातिशय पुण्य की कारण तो है ही, साथ ही साथ परम्परा से मुक्ति की कारण भी है।
- भगवान् के मन्दिर में प्रवेश करते ही दुनिया के सारे महल और मकान फीके लगने लगते हैं।
- हे भगवन्! अब हमें प्रसिद्धि की नहीं सिद्धि की जरूरत है।

आर.के. मार्बल्स लि.
किशनगढ़ (राजस्थान)
के सौजन्य से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org